लाल किले में

१८५८ और १९४५-४६ के
महत्वपूर्ण ऐतिहासिक मुक-
दमों की एक सुनहरी झांकी

सम्पादक
श्री सत्यदेव विद्यालंकार
भूमिका
महात्मा भगवानदीन जी

मा र वा ड़ी प ब्लि के श न
४० ए, हनुमान रोड नई दिल्ली (१)

प्रकाशकः—
मारवाड़ी पब्लिकेशन्स
होप सर्कस, अलवर

मुद्रकः—
जगन्नाथप्रसाद शर्मा
भानु प्रिंटिंग वर्क्स,
धरमपुरा, दिल्ली।

विक्रेताः—
मारवाड़ी पब्लिकेशन्स
४० ए, हनुमान रोड, नई दिल्ली (१)

मूल्य २।।)
डाक व्यय के साथ २।।-)
वी० पी० से २।।।≥) खर्च पड़ेगा।

पढ़िये

"लाल किले में" किताब में है क्या,—यह आपके जी में जरूर आयेगा। नाम ही अनोखा है। यह कोई कहानी या उपन्यास नहीं; पर, उस जैसा दिलचस्प जरूर है। फिर, अपने मुल्क वालों की एक दिल से की गई कोशिशें क्यों मनचीता फल न ला सकीं,—उसकी बात भी तो इसमें है।

शाहजहां ने शाहजहानाबाद—दिल्ली—में जब शाहजहांगढ़, लालकिले—की नींव डाली थी, तब उसको ख्याल न था कि उसको अपने ही किले में अपने एक बेटे और अपनी एक बेटी के हाथों कैदी बनाया जायगा। उसे यह भी पता न था कि उसके खानदान का एक बादशाह कुछ खास सिपाहियों की फौजी अदालत के सामने मुजरिम के कटहरे में खड़ा होकर बयान देगा। ताजमहल में लेटी हुई उसकी रूह में क्या क्या इनक़लाब हुये होंगे, कौन जाने ? बहादुर शाह को ही यह कब मालूम था कि मुजरिम की हैसियत से दिया हुआ उसका सीधा-सादा बयान इतनी छिपी हुई गरमी रखता है कि मरने के बाद उसकी कब्र में की खाक उसीके मुल्क के एक फर्द के हाथ पड़कर उसके मुल्क का रंग बदल देगी। फिरंगी को अगर यह पता होता, तो वह बहादुर शाह की कब्र रंगून में न बना कर साईबेरिया के दूर उत्तर में कहीं बनाता।

पढ़ने वालों को इस किताब में डूबते सूरज के समय की दर्दभरी आहें और उगते सूरज के समय के उम्मीदभरे तराने—दोनों ही पढ़ने और सुनने को मिलेंगे।

बहादुर शाह की हार में मुल्क हारा था। पर, बहादुर शाह की क़ब्र की खाक माथे पर लगाये आजाद हिन्द फौज की हार में मुल्क की जीत हुई है और शानदार जीत हुई है। फौजें हारी हैं सही, पर न उनका दिल हारा है, न आत्मा।

ढिल्लन-सहगल-शाहनवाज के बयान मुजरिम के बयान नहीं हैं, उमंगों भरे दिलों की एक स्वर में गूंज हैं। यह हार है, पर अभिमन्यु और पुरु जैसों की याद दिलाने वाली होने से काबिल कद्र है। उगते हुये सूरज में तेजी भले ही न हो, तेजी की उम्मीद तो रहती ही है। तभी तो वह आंख और मन दोनों को भली लगती है।

जनरल डायर कब्र से आकर शाह नवाज-सहगल-ढिल्लन के साथियों से सीखे कि बहादुर किसे कहते हैं और बहादुर अदालत के सामने कैसे बोलते हैं? उसने निहत्थों पर गोली चला कर नाम कमाया था। हमारे ढिल्लन-सहगल-शाहनवाज विदेशियों की अदालत में शेर के से दिल लिये हुये दहाड़े थे।

इस किताब में पढ़ने वाले पढ़ें और देखें कि किस तरह नाउम्मीदी जब उम्मीद में बदल जाती है, तो गिरती हुई आवाज भी गूंज बन जाती है।

'जयहिन्द' के कारनामे और करामात पढ़िये, समझिये, अपनाइये और आजाद होने की उमंगें जी में भर कर इस किताब की असली कीमत चुकाइये।

४० ए, हनुमान रोड
नई दिल्ली (१)
जलियानवाला दिवस १९४६

—भगवानदीन

जय हिन्द

"नई दिल्ली के वायसराय भवन में गरीबों और दुःखियों के लिये अस्पताल बनाया जायगा।"

यह घोषणा महात्मा गान्धी ने नमक सत्याग्रह के फल-स्वरूप हुये गान्धी-ईरविन-समझौते के बाद कराची कांग्रेस में की थी।

और:—

"नई दिल्ली के वायसराय भवन पर राष्ट्रीय झण्डा फहराना और पुराने ऐतिहासिक लालकिले में विजय महोत्सव मनाना हमारा निश्चित लक्ष्य है।"

यह घोषणा आजाद हिन्द सरकार के राष्ट्रपति और आजाद हिन्द फौज के सेनापति नेताजी श्री सुभाषचन्द्र घोस ने २५ अगस्त १६४४ को रंगून में की थी।

दोनों घोषणाओं के शब्दों में अन्तर है; किन्तु इन शब्दों के पीछे छिपी हुई भावना में कोई अन्तर नहीं है। दोनों का दृष्टिबिन्दु अपने देश की वह आजादी है, जिसके लिये लड़ी जाने वाली लड़ाई में दिल्ली के लाल किले को अनायास ही विशेष महत्व मिल गया है। इससे भी बड़े बड़े किले देश में अन्य कई स्थानों पर हैं और उनका ऐतिहासिक महत्व भी कुछ कम नहीं है; किन्तु देश की आजकल की आजादी की लड़ाई में उनको इतना महत्व नहीं मिल सका। यह महत्व दिल्ली के लाल किले को

केवल उन ऐतिहासिक मुकदमों के ही कारण नहीं मिला, जिनकी एक झांकी इस किताब में दी जा रही है; किन्तु उन घटनाओं के भी कारण मिला है, जिनकी चर्चा प्रायः सभी आन्दोलनों के दिनों में होती रही है। समाचारपत्रों में ही नहीं, किन्तु केन्द्रीय असेम्बली तक में जब-तब उनकी गूंज सुनने में आती रहती है। हमारे ये आन्दोलन हमारी आजादी की लम्बी लड़ाई के छोटे-मोटे मोर्चे ही हैं। इन मोर्चों में बनाये गये वे बंदी, जो आम तौर से भयानक समझे जाते हैं, इसी लाल किले में रखे जाते हैं। वहां उन पर की जाने वाली ज्यादतियों की जांच की मांग तो पिछले दिनों में भी की गई थी। अगस्त १९४२ का मोर्चा १८५७ की क्रान्ति की याद दिलाने वाला था। इसलिये इन दिनों में इस लालकिले में राजबन्दियों का रखा जाना और उनको लेकर उसकी विशेष रूप से चर्चा होना स्वाभाविक ही था। कैसा यह संयोग था कि आजाद-हिन्द सरकार और आजाद हिन्द फौज के रूप में हुई महान् क्रान्ति के वीर उपासक भी बंदी बना कर इसी लालकिले में लाये गये और उन पर चलाये गये मुकदमे के नाटक की रंगभूमि भी इसी में तय्यार की गई। सरकार ने कुछ भी क्यों न सोचा हो, किन्तु इस रूप में हुई इतिहास की पुनरावृत्ति देश में नये जीवन, नई स्फूर्ति, नई प्रेरणा, नई चेतना और नये जीवन का संचार कर गई। इस प्रकार की गई भारी भूल का सरकार को जब पता चला, तब इस नाटक की रंगभूमि बदल दी गई। लालकिले के स्थान में छावनी में मुकदमे होने लगे और बंदी बनाये गये लोगों को भी वहां तबदील कर दिया

गया। लेकिन, तीर कमान से छूट चुका था। लालकिले के नाम से हुई चर्चा अपना काम कर गई।

दिल्ली के छोटे से सूबे में आज भी उस स्वतन्त्र शासन का कहीं नाम भी नहीं है, जिसका श्रीगणेश 'स्वराज्य' या 'आजादी' के नाम पर अन्य सूबों में कभी का किया जा चुका है। देश की किस्मत का फैसला भले ही दिल्ली में क्यों न होता हो, किन्तु उसका कुछ भी लाभ दिल्ली को नहीं मिलता। यहां स्थानीय स्वशासन के नाम पर चार-पांच म्युनिसिपैलिटियां हैं। उनमें केवल एक का चुनाव होता है और उसका प्रधान तो डिपुटी कमिश्नर ही होता है। बाकी कमेटियों की तरह इसका काम भी सरकार के एक महकमे की भाँति चलता रहता है। चीफ कमिश्नर इस सूबे के ब्रह्मा-विष्णु-महेश यानी सब कुछ हैं। इसीलिये यहाँ की हकूमत इतनी दकियानूसी, प्रतिगामी, अनुदार और असहिष्णु है कि जरा सी भी लोक-जागृति और मतस्वातन्त्र्य उसे सहन नहीं है। जिन चीजों का अन्य प्रान्तों में छापना और बेचना जुर्म नहीं माना जाता, उन्हें भी यहाँ सहन नहीं किया जा सकता। आजाद हिन्द सरकार, आजाद हिन्द फौज और नेताजी के सम्बन्ध में अन्य प्रान्तों में दर्जनों पुस्तकें प्रकाशित होकर बिक रही हैं; किन्तु दिल्ली की हकूमत ने दस-बारह दिनों में ही हमारी 'जयहिन्द' पुस्तक को जब्त करके उसको छापने वाले प्रेसों से जमानतें भी माँग लीं। ऐसा किसी भी दूसरे सूबे में नहीं हुआ। फिर भी उस पुस्तक का जो स्वागत हुआ, उससे हमें बहुत बल और उत्साह मिला। उसकी अठारह-उन्नीस

हजार प्रतियाँ हाथों-हाथ निकल गईं, अनेक भाषाओं में उसके अनुवाद करने की माँग हुई और बम्बई से विशेष संस्करण के प्रकाशन का आग्रह किया गया। चोर बाजार में १।) की पुस्तक की कीमत ६) तक पहुंच गई।

दिल्ली की सरकार के इस कठोर और अनुदार रुख को देखते हुए इस पुस्तक में अपनी ओर से प्रायः कुछ भी न लिख कर केवल सरकारी कागजों में दर्ज चीजों को अपने ढंग से दे दिया गया है। मुकदमों की रूखी कानूनी कार्यवाही को रोचक कहानी का रूप देकर आम जनता के काम की चीज अवश्य बना दिया गया है। इसीसे कानूनी दृष्टि से इस किताब का इतना महत्व नहीं आंका जाना चाहिये। इतिहास और राजनीति की दृष्टि से इन मुकदमों का जो मौलिक महत्व है, उसमें कमी नहीं आने दी गई है। आजाद हिन्द फौज के मुकदमे में श्री भूलाभाई देसाई ने जो लम्बी बहस की थी, वह लगभग स्वतः में चार सौ पृष्ठों की बड़ी पुस्तक है और हमारे सरीखे गुलाम राष्ट्रों के अपनी आजादी के लिये किये जाने वाले युद्ध के जन्मसिद्ध अधिकार के पक्ष में की गई बहुत ही जोरदार और जबरदस्त बहस है। हमारी आजादी की लड़ाई के इतिहास में यदि आजाद हिन्द फौज का मोर्चा एक सुनहरी अध्याय है, तो श्री देसाई की यह बहस उस अध्याय का एक अमर पृष्ठ है। अंग्रेजी में सिर्फ इसी को लेकर कई पुस्तकें कई स्थानों से प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रान्तीय भाषाओं में भी उसका अच्छा सम्मान हुआ है। हिन्दी में उस पर कुछ भी ध्यान दिया नहीं गया। इस किताब में भी

उसके साथ पूरा न्याय कर सकना संभव न था। उससे इसका आकार प्रकार-बहुत बढ़ जाता और उसकी कीमत भी इतनी बढ़ जाती कि आम जनता के लिये वह सुलभ नहीं रहती। इस बारे में अन्यत्र दी गई एक सूचना की ओर हम अपने सहृदय पाठकों व एजेण्टों का ध्यान आग्रह के साथ आकर्षित करते हैं। उनसे यथेष्ट प्रोत्साहन मिलने पर हम उसको अलग एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने की इच्छा रखते हैं। हमारे पाठक और एजेण्ट उस पर पूरा ध्यान देने की कृपा अवश्य करें।

इस पुस्तक के सम्बन्ध में दो एक बातों की चर्चा करनी आवश्यक है। महात्मा भगवानदीनजी ने भूमिका में बिलकुल ठीक ही लिखा है कि "पढ़ने वालों को इस किताब में डूबते हुये सूरज के समय की दर्दभरी आहें और उगते हुए सूरज के समय के उम्मीदभरे तराने दोनों ही पढ़ने और सुनने को मिलेंगे। फिर आपने इस किताब का कितना सुन्दर खाका इन शब्दों में खींच दिया है कि "बहादुर शाह की हार में मुल्क हारा था, पर बहादुर शाह की कब्र की खाक माथे पर लगा कर मैदान में उतरने वाली आजाद हिन्द फौज की हार में मुल्क की जीत हुई है। फौजें हारी हैं सही, पर न उनका दिल हारा है और न आत्मा।" सारी किताब में इसी सूत्र की व्याख्या की गई है और यही चित्र कुछ बड़े रूप में पेश किया गया है। हिन्दुस्तान के अन्तिम सम्राट अबुल मुजफ्फर सिराजुद्दीन मुहम्मद बहादुरशाह गाजी, इसमें सन्देह नहीं कि, केवल नाम के बादशाह रह गये थे। अंग्रेजों से सालाना मिलने वाले १८ लाख रुपये पर वे अपना गुजारा

चलाते थे। देश की असली हकूमत तब अंग्रेजों के ही हाथ में थी। लेकिन, बुझते हुए उस दिये की लौ से दूसरे दिये जरूर जलाये जा सकते थे और गुलामी के घोर अन्धकार में कभी न कभी आजादी का प्रकाश अवश्य फैलाया जा सकता था। इसीलिये १८५७ की क्रान्ति के दुर्भाग्यवश विफल हो जाने के बाद इस टिमटिमाते हुए दिये को एक दम बुझा दिया गया और उस राजवंश का अस्तित्व ही मिटा दिया गया। इतना ही नहीं,—१८५७ की क्रान्ति को मुस्लिम षड्यन्त्र बताकर भारतीय राष्ट्रीयता के विरोध में रचे गये उस भीषण षड्यन्त्र का सूत्रपात भी उसी समय कर दिया गया था, जिसका दुष्परिणाम पृथक निर्वाचन के रूप में सामने आकर आज पाकिस्तान का भयानक रूप धारण कर चुका है। हिन्दू-मुसलमान में फूट डालकर शासन करने की दुर्नीति तभी अपनाई जा चुकी थी। बादशाह के मुकदमे में की गई सरकारी वकील की बहस इसी जहर से भरी हुई है। आजाद हिन्द फौज के मुकदमे में भी यह खेल खेलने की कोशिश की गई। यह दिखाने का यत्न किया गया कि मुसलमान जनता तथा मुसलमान युद्धबन्दी आजाद हिन्द फौज में स्वेच्छा से भरती न हुए थे और झांसी की रानी रेजीमेण्ट में एक भी मुस्लिम महिला शामिल न हुई थी। लेकिन, यह खेल सफल न हो सका। सच तो यह है कि हिन्दू-मुस्लिम-एकता की चट्टान पर खड़ी की गई आजाद हिन्द फौज कूटनीतिज्ञ अंग्रेजों द्वारा रचे गये इसी षड्यन्त्र के विरुद्ध एक सफल और सक्रिय विद्रोह था। उसकी देशभक्ति और देशसेवा की अजेय और अदम्य भावना

को अन्त में न केवल सरकारी वकील और जज एडवोकेट को ही, किन्तु सरकार को भी स्वीकार करना पड़ गया। इन दोनों मुकदमों को एक साथ इस किताब में पेश करने का यही मुख्य नैतिक पहलू है। हमारे पाठकों का भी इस पर ध्यान जाये विना न रहेगा।

बादशाह की आयु तब ८२-८३ वर्षों की थी, जब उन पर मुकद्दमा चलाया गया था। 'बादशाह' रहते हुये भी उनकी हालत लालकिले में कैद रहने वाले 'नजरबन्द' की-सी थी। शायरी लिखवाने में वह मस्त रहते थे। आज भी उनकी पत्नी जीनत महल के हाथ की लिखी हुई उनकी कवितायें मिलती हैं। शासन, फौज या सरकार से सम्बन्ध रखने वाले अन्य कामों में वह कुछ भी दिलचस्पी न लेते थे। फिर भी उन पर मुकदमा चलाया गया। उसका वास्तविक कारण उनका कोई अपराध न था; किन्तु विशुद्ध गहरे राजनीतिक हेतु से ही वह चलाया गया था। शुरू में उनको सजा देने का भी ऐसा कोई विचार न था, किन्तु अन्त में उनको आजीवन कैद की सजा देकर सख्त पहरे में कलकत्ता भेज दिया गया और कहा गया कि कलकत्ता जाने पर ही आगे के स्थान की सूचना दी जायगी। वहां पहुंचते ही उनको वारशिप (लड़ाई के जहाज) पर सवार करके रंगून पहुंचा दिया गया। ८७ वर्ष की आयु में १८६२ में वहां ही उनका देहावसान हो गया। इस स्थिति और इस बुढ़ापे में अपने सर्वथा निर्दोष होने का बादशाह ने जो बयान दिया, उसको हमने 'दीनता की पुकार' नाम दिया है। महात्मा भगवानदीनजी ने उसको "डूबते

हुये सूरज के समय की दर्दभरी आहें" कहा है। लेकिन, आजाद हिन्द फौज के अफसरों की आयु २७-३० वर्ष के ही आस-पास है। उन्होंने सम्राट के विरुद्ध युद्ध लड़ने के अभियोग को बहादुरी के साथ स्वीकार किया है। सरकारी पक्ष की दृष्टि में वह 'राजद्रोह' था और अभियुक्तों की दृष्टि में वह थी देशसेवा, जो उत्कृष्ट देशभक्ति की ऊंची एवं पवित्र भावना से प्रेरित हो कर ही की गई थी। इसी लिये उनकी भावना, कल्पना और आकांक्षा को भूमिका में महात्माजी ने 'उगते हुये सूरज के समय के उम्मीदभरे तराने' कहा है। इस दृष्टि से यह किताब केवल दो मुकदमों की एक झांकी न हो कर निराश एवं हताश लोगों को आशा का वह सन्देश देने वाली है, जिससे प्रेरित हो कर आजाद हिन्द फौज ने बहादुर शाह की कब्र की खाक माथे पर लगा कर इम्फाल के मोर्चे की ओर कूच किया था। स्वतन्त्र भारतमाता के चरणों में माथा नवा कर अपने को कृतकृत्य करना उनका एकमात्र लक्ष्य था। जिन लोगों ने मलाया और बर्मा में संकटापन्न देशवासियों को निराशा से आशा, अन्धकार से प्रकाश और मृत्यु से जीवन की ओर जाने का राजमार्ग दिखाया था, उनका जीवन-कार्य हमारे लिये भी आशा का जीता-जागता सन्देश है। सरकारी कागजों के आधार पर ही क्यों न हो, इस पुस्तक में भी आजाद हिन्द सरकार, आजाद हिन्द फौज और नेताजी के कार्य का पूरा ब्यौरा आ गया है। 'जयहिन्द' की वाणी से गुंथा अगाध कुछ अंशों में

तो इससे पूरा हो ही गया है। इसी दृष्टि से इसका सम्पादन और प्रकाशन किया गया है।

'माहेश्वरी' बम्बई के सम्पादक श्री निरंजन जी शर्मा तथा 'प्रभात' जयपुर के श्री सतीशाजी विद्यालंकार ने इसके सम्पादन में जो सहायता की है और "हिन्दुस्तान" नई दिल्ली के भाई केदारनाथ जी शर्मा से जो प्रेरणा और सहायता मिली है, उसके लिये उनके प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रगट करना आवश्यक है।

मारवाड़ी पब्लिकेशन्स
४० ए, हनुमान रोड़
नई दिल्ली (१)
३० अप्रैल १९४६

—सत्यदेव विद्यालंकार

एक नजर में

१८५७ के बाद

: १ :

अभियोग

१८५७ में हुई राज्यक्रान्ति को कुचलने के लिये जो अनेक उपाय काम में लाये गये थे, उनमें सबसे बड़ा उपाय आजाद-हिन्द के अन्तिम बादशाह मुहम्मद बहादुर शाह पर लाल किले में चलाया गया मुकद्दमा था। इतिहास की छानबीन करने वाले इस सम्बन्ध में जिन नतीजों पर पहुंचे हैं, उनकी चर्चा करने का यह स्थान नहीं है। सरकारी कागजों में दी गई कार्यवाही के अलावा यहाँ और कुछ भी दिया नहीं गया। २७ जनवरी १८५८ को एक सैनिक अदालत के सामने, जिसमें पांचों जज युरोपियन थे, यह मुकद्दमा चलाया गया था। अदालत के प्रधान का नाम था—लैफ्टिनेण्ट कर्नल डाइस, अन्य सदस्यों के नाम थे—मेजर पामर, मेजर रैडमाण्ड, मेजर साण्डरस और कप्तान राथनी। दुभाषिये का काम श्री जेम्स मुर्फी ने किया था। सरकारी वकील थे—मेजर एफ० जे० हैरियट। दिल्ली के लाल किले के

दिवानखास में अदालत की कार्यवाही की गई थी। बादशाह पर चार अभियोग लगाये गये थे। उनमें कहा गया था कि अभियुक्त ने :—

(१) ब्रिटिश सरकार के पेंशनर होते हुये भी दिल्ली और उसके आस-पास १० मई से १ अक्टूबर १८५७ के बीच अनेक कमीशन-प्राप्त अफसरों और सिपाहियों को हत्या करने और राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये सहायता की और भड़काया था।

(२) अपने पुत्र मिर्जा मुगल को, जो ब्रिटिश सरकार की एक प्रजा था और अन्य प्रजाजनों को राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने और युद्ध करने के लिये प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया।

(३) ब्रिटिश सरकार की प्रजा होते हुये और राजभक्ति की कुछ भी परवा न करते हुये दिल्ली में ११ मई १८५७ को या उसके आसपास राज्य के विरुद्ध बगावत की, अपने को हिन्दुस्तान का राजा और सम्राट घोषित किया, विश्वासघात करके शहर पर गैरकानूनी तौर पर कब्जा किया, अपने पुत्र मिर्जा मुगल, मुहम्मद बख्त खां आदि बागियों के साथ मिल कर धोखा दिया, दगा किया, षडयन्त्र रचा, बगावत की, विद्रोह किया और राज्य के विरुद्ध युद्ध किया। हिन्दुस्तान में से ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिये दिल्ली में सेनायें इकट्ठी कीं और उनको जहां-तहां लड़ाई पर भेजा।

(४) १६ मई १८५७ को या उसके आस-पास दिल्ली के राजमहल (किले) में ४९ युरोपियनों की, जिनमें अधिकांश

स्त्रियाँ और बच्चे थे, बदमाशी के साथ हत्या करने या कराने में सहायता दी। सिपाहियों को युरोपियन अफसरों और अँग्रेजों की, जिनमें स्त्रियां तथा बच्चे भी शामिल हैं, हत्या करने के लिये उत्साहित तथा प्रेरित किया। इसके लिये उनको नौकरी व तरक्की आदि का लालच दिया। देसी नरेशों के नाम हुक्म जारी किये कि वे अपने इलाके में आने वाले ईसाइयों और अंग्रेजों की हत्या करें।

: २ :

दीनता की पुकार

बादशाह ने सफाई में दिये गये वक्तव्य में कहा था कि विद्रोह होने के दिन तक मुझे उसका कुछ भी पता न था। सवेरे ८ बजे के लगभग विद्रोही फौजियों ने आकर मेरा महल घेर लिया। उन्होंने बताया कि उनसे कहा गया था कि वे गाय और सुअर की चर्बी लगी हुई गोलियों को अपने मुंह से खोलें। ऐसा करना उनके धर्म के विरुद्ध था। इस पर उन्होंने मेरठ में सब युरोपियनों को मार डाला। मैंने महल की खिड़कियों के दरवाजे बन्द कर लिये। किसी तरह फौजियों को वहाँ से हटाया गया। महल की सेना के कमाण्डर मि० फ्रेजर ने मुझ से कहा कि वह उपद्रव को शान्त करने का यत्न करेगा। मि० फ्रेजर ने मुझ से दो गन और दो पालकियाँ मांगीं। वे पालकियों में दो अंग्रेज स्त्रियों को महल में छिपाने के लिये भेजना चाहते थे। लेकिन, पालकियाँ पहुंचने से पहिले ही उन तीनों की हत्या कर दी गई।

थोड़ी ही देर में चारों ओर से महल घेर लिया गया। मुझे कैदी बना कर मुझ पर पहरा बिठा दिया गया। मार दिये जाने के भय से मैं अपने कमरे के अन्दर चुपचाप चला गया। शाम तक वे तोपखाने से कुछ और अंग्रेज स्त्री-पुरुषों को कैदी बना कर ले आये और उनको मार देने का उन्होंने निश्चय किया। मैंने उस समय उनको मारने से बचा लिया। दो बार और भी मैंने उनकी रक्षा की। लेकिन, तीसरी बार उन्होंने मेरे हजार मना करने पर भी उनको मार ही दिया। मैंने इसके लिये कोई हुक्म न दिया था। मेरे नाम का इसके लिये दुरुपयोग जरूर किया गया। लेकिन, मुझे यह भी मालूम नहीं कि मेरे अंगरक्षकों ने भी इसमें भाग लिया। उन्होंने ऐसा मिर्जा मुगल के कहने पर किया होगा। हत्याकाण्ड के बाद भी मुझे उसका कुछ भी पता नहीं दिया गया। मैंने फ्रेजर और उसके साथियों को मारने का भी कोई हुक्म नहीं दिया। मैं खुदा की कसम खाकर कहता हूं कि मैंने इनको या किसी को भी मारने का हुक्म नहीं दिया। मुकुन्दलाल और दूसरे गवाहों ने जो कुछ भी कहा है, वह बिल्कुल झूठ है। हत्याकाण्ड के बाद विद्रोही सैनिक मेरे पास आये और बोले कि हम मिर्जा मुगल, मिर्जा खैर सुलतान और अबुल बकर को अपना अफसर बनाना चाहते हैं। मेरे इनकार करने और चुप रहने पर भी मिर्जा मुगल को सेनापति बना दिया गया। मैं इतना लाचार था कि जिन कागजों पर विद्रोही लोग चाहते, मेरे हस्ताक्षर जबरन करवा लेते और मोहर भी लगवा लेते थे। कुछ खाली लिफाफों पर भी मोहरें लगा ली गई थीं। उनका मनमाना उपयोग किया जाता

था। जो भी कोई मनचाहा हुक्म जारी कर देता था। इसके लिये मुझसे पूछना तो दूर रहा, मुझे उनका पता तक न दिया जाता था। मेरा सेक्रेटरी भी इसमें दखल न दे सकता था। मेरे सामने मेरे नाम से जो कुछ कहा जाता था, मैं उसका भी विरोध नहीं कर सकता था। मेरे नौकरों पर अंग्रेजों का साथ देने का सन्देह किया जाता था। मेरे हकीम अहसान उल्लाह, महबूबअली खां और बेगम जिन्नत महल को तो मारने की धमकी दी गई थी। हकीम का तो एक दिन मकान भी लूट लिया गया और उसको कैदी बनाकर मारने की धमकी दी गई। मुश्किल से उसको बचाया गया। लेकिन, वह अन्त तक कैद में रहा। मेरे नौकरों तथा साथियों को और बेगम जिन्नत महल के पिता शमशीर उद्दौला को भी कैदी बना लिया। मुझे गद्दी से उतार कर मिर्जा मुगल को बादशाह बनाने की घोषणा कर दी गई थी। बेगम जिन्नत महल को भी कैद में बन्द करने के लिये मुझसे मांगा गया। उनकी अपनी अदालतें थीं और वे आपस में फैसला करके सब काम करते थे। स्वेच्छा से वे शहर में लूट-पाट मचाते और धन बटोरते थे। यह सब विद्रोही सिपाहियों ने किया। मैं उनके हाथों में कैद था। लाचार और मरने से भयभीत होकर ही मैंने जो उन्होंने चाहा, वही किया। मैं इस जीने से तंग आगया था। मेरे अफसर भी जान से हाथ धोने के भय से निराश हो गये थे। मैंने गरीबी का जीवन बिताने का निश्चय करके वेशभूषा बदल कर फकीर या पीर बनने का विचार किया। कुतुब साहिब जाकर मैं अजमेर शरीफ जाना चाहता था और वहां से मक्का। लेकिन,

फौजियों ने मुझे ऐसा भी न करने दिया। सरकारी तोपखाना और खजाना उन्होंने ही लूटा था। मैंने लूटपाट में कुछ भी हिस्सा न लिया। उन्होंने बेगम जिन्नत महल के मकान को भी लूटने की कोशिश की। मैं उनके साथ होता, तो वे ऐसा क्यों करते ?

अबीसिनियन कम्बार मुझसे मक्का हज करने के लिये जाने की छुट्टी लेकर विदेश गया था। मैंने उसको ईरान या वहां के बादशाह के नाम पत्र देकर नहीं भेजा। यह मनगढ़न्त कहानी है। महम्मद दरवेश की जो अर्जी पेश की गई है, उस पर भरोसा नहीं करना चाहिये। फौजी तो इतने बागी हो गये थे कि वे मुझसे सलाह तक न करते थे और मेरे प्रति कुछ भी सम्मान प्रगट न करते थे। वे दीवानखास, दीवानआम और अन्य स्थानों में भी जूते पहने हुये चले आते थे। अपने मालिकों की हत्या करने वाले फौजियों पर मैं क्या भरोसा कर सकता था ? मुझे भी उन्होंने अपना कैदी बना लिया था। जब कि मेरे पास न तो फौज थी, न खजाना था और न बारूदखना या तोपखाना ही था, तब मैं उनका विरोध कैसे कर सकता था ? मैंने उन्हें कभी भी किसी प्रकार की सहायता नहीं दी। मैंने तो तुरन्त आगरा में लैफ्टिनेण्ट गवर्नर के पास सब बातों की सूचना तक भेज दी थी। फौजियों ने मेरा जलूस भी जबरन निकाला था। जो थोड़े बहुत नौकर मेरे पास थे, उनको मैंने अपनी रक्षा के लिये ही रख छोड़ा था। मौका पाकर छिप कर मैं हुमायूँ के मकबरे पर चला गया। जीवन-रक्षा की भीख मांग कर मैं वहां से लौटा और मैंने अपने

को सरकार के हाथों में सौंप दिया। बागी फौजी मुझे अपने साथ ले जाना चाहते थे। मैं उनके साथ नहीं गया।

यह सब मैंने खुदा को हाजिर-नाजिर जान कर सच-सच कह दिया है। इसमें लेशमात्र भी झूठ नहीं है।

: ३ :

मुसलिम षड्यन्त्र

सरकारी वकील ने अपनी लम्बी बहस शुरू करते हुये कहा—मैं उन सब कारणों पर भी प्रकाश डालना चाहता हूं, जिनसे इतनी भयानक बगावत, जिसे संसार के इतिहास में अभूतपूर्व कहा जा सकता है, हुई और जिसमें एक धर्म के विरुद्ध सारे लोग एक हो गये; हालांकि इस देश के निवासी हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के विरुद्ध उसने कुछ न किया था। मुझसे इसमें भूल होना संभव है कि मैं एक धार्मिक आन्दोलन को राजनीतिक रंग दे रहा हूं और यह बताना चाहता हूं कि इस देश के लोगों ने उन विदेशियों को, जो उनसे रंग-रूप, आचार-विचार तथा रहन-सहन आदि में सर्वथा भिन्न थे, अपने देश से खदेड़ कर अपनी सत्ता कायम करने की कोशिश में कितने भीषण अत्याचार किये। हमें देखना यह है कि इतनी भीषण बगावत क्यों हुई, क्यों इतने विभत्स हत्याकाण्ड हुए और इन सबका

बीजारोपण कहां से हुआ ? इन प्रश्नों का कोई साफ जवाब हमारे पास नहीं है। कारण यह है कि यहां की घटनाओं का सम्बन्ध बाहर की बातों के साथ है। फिर भी हमें गर्व है कि हम सचाई के बहुत पास पहुंच गये हैं। दिल्ली में बहुत पहिले षड्यन्त्र रचे जा रहे थे। इस नाममात्र के बादशाह को धर्मान्ध मुसलमान अपने धर्म का पीर मान कर अब भी पूजते थे। वह करोड़ों की आशा और आकांक्षा का केन्द्र बना हुआ था। वे उसको इतनी प्रतिष्ठा और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे कि न केवल मुसलमान, किन्तु जिनका मुसलमानों के साथ कुछ भी मेल न था, वे भी उसके चारों ओर इकट्ठा हो गये।

घटनाओं का विवरण पेश करते हुए सरकारी वकील ने कहा कि मई १८५७ के अन्त में मेरठ में ८५ फौजियों पर फौजी अदालत में इसलिये मुकद्दमा चलाया गया कि उन्होंने गोलियों को लेने से इनकार कर दिया था। उनको सजा सुनाई गई और ६ मई को सवेरे परेड पर उन्हें हथकड़ियां पहिना दी गईं। १० मई की शाम को ६॥ बजे बगावत शुरू हुई। कप्तान टिटलर के कहने के अनुसार इन छत्तीस घण्टों में इसके लिये तय्यारी की गई। मेरठ से दिल्ली का रास्ता पांच घण्टे का है। रविवार की शाम को मेरठ के लोग दिल्ली आये और सोमवार के लिये तय्यारी कर गये। यह निर्णय काफी पहले कर लिया गया था कि यदि चर्बी वाली गोलियों के इस्तेमाल पर जोर दिया गया, तो दिल्ली और मेरठ के फौजी मिलकर बगावत का झण्डा फहरा देंगे। लेकिन, इस समय दिल्ली या मेरठ में कहीं भी चर्बी वाली गोलिया न थीं। अभ्यास

के लिये जो गोलियाँ बनाई जातीं थीं, उनको फौजी स्वयं बनाया करते थे। यदि उनमें चर्बी काम में लाई गई होती, तो धार्मिक आधार पर उन्होंने उनको बनाने से इनकार कर दिया होता। फिर, मुसलमानों में जात-पात का कोई झमेला भी तो नहीं है। ये सूअर को छूने पर धर्म के बिगड़ने की बात नहीं करते। खानसामों का काम करते हुए ये रोज उन प्लेटों को उठाते, धोते और काम में लाते हैं, जिनमें वह सामान खुले तौर पर परोसा जाता है, जिसके लिये गोली के सम्बन्ध में आपत्ति की गई है। फौजी मुसलमानों के भाईबन्द अफसरों के घर में गाय या सूअर का मांस बनाने या परोसने में कभी कुछ भी आपत्ति नहीं करते। अचरज तो यह है कि इन गोलियों के बारे में कभी किसी ने कुछ पूछताछ या जांच भी तो नहीं की। अदालत में पेश किये गये कैदी के सामने जब मेरठ या दिल्ली में इन्हीं गोलियों से यूरोपियन अफसरों को गोली के घाट उतारा गया, तब किसी भी मुसलमान या हिन्दू ने उनके इस्तेमाल पर कोई आपत्ति नहीं की। किसी दरख्वास्त में भी इन गोलियों के बारे में कभी कोई आपत्ति पेश नहीं की गई। जिन तीन फोजों ने सबसे पहले बगावत का झण्डा फ़हराया, उनमें एक भी चर्बी वाली गोली न थी। यदि वस्तुतः उनकी यही शिकायत थी, तो वे स्तीफा देकर काम छोड़ सकते थे। लेकिन; जो भयानक काम उन्होंने किये, उसके लिये इन गोलियों को लेकर असली या नकली कोई भी कारण न था। उनके लिये तो निश्चय ही कोई ठोस या गम्भीर कारण होना चाहिये था। इस विद्रोह और हत्याकाण्ड के लिये षड्यन्त्र बहुत समय

से रचा जा रहा था। अंग्रेजी राज को पलटने की कल्पना एक ही क्षण में नहीं की जा सकती थी। इस षड्यन्त्र के लिये कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न होने पर भी उसका प्रारम्भ जिस रूप में हुआ, उससे उसका साफ साफ पता चल जाता है। विद्रोह की चिनगारी सुलगाने के लिये तो चर्बी वाली गोलियों की बात अवश्य उड़ाई गई; किन्तु उससे पहिले या बाद में उनकी चर्चा भी नहीं की गई। ८५ फौजियों को सजा देने पर कोई रोष प्रकट नहीं किया गया। उनके साथ कोई सहानुभूति नहीं दिखाई गई। सारी फौजें नियन्त्रण में रह कर राजभक्ति से काम करती रहीं। दिल्ली में षड्यन्त्र के पक जाने के बाद बगावत का झण्डा फहराया गया।

इस अदालत में पेश कैदी का सम्बन्ध इस षड्यन्त्र के साथ सबसे पहले तब प्रगट होता है, जब बागी फौजें मेरठ से दिल्ली आकर अपने को दिल्ली के किले में उसके सामने पेश करती हैं। इसीसे यह भी पता चलता है कि दोनों में पहिले से ही गाँठ-सांठ हो चुकी थी। उसके नौकरों ने उसकी आँखों के सामने अपने हाथ यूरोपियनों के खून में रंगे थे। उनमें दो तो नवयुवा महिलायें थीं। सफेद बालों वाले इस बूढ़े आदमी ने अपनी शिक्षा, अपने घराने की राजकीय प्रतिष्ठा और सुख-शान्ति के एकान्त जीवन का कुछ भी विचार न कर इन जंगली कामों में साथ दिया। खुले आम दर्जनों लोगों के सामने दिन दिन की रोशनी में उस किले में ये हत्यायें की गई थीं, जिस पर कम्पनी की हकूमत में भी तैमूर घराने के अन्तिम बादशाह का ही पूरा अधिकार था। हकीम अहसान उल्लाहखाँ

की गवाही से यह प्रगट है कि कैदी की जानकारी में यह सब किया जा रहा था। उन दिनों के समाचारपत्रों में भी यह सब प्रगट किया गया था। गवाहों ने भी स्वीकार किया है कि मि० फ्रेजर, कप्तान डगलस, मि० हटकिनसन, मि० जैनिंग्स और दो अंग्रेज औरतों की हत्या करने वाले कैदी के अपने नौकर थे। हकीम अहसान उल्लाखां की गवाही से यह भी प्रगट है कि इन हत्याओं की खबर मिलने पर कैदी ने क्या किया ? उसने इनको रोकने के लिये कुछ भी नहीं किया। हत्यारों को कुछ भी सजा नहीं दी गई, किसी को बरखास्त नहीं किया गया और न कोई जांच-पड़ताल या पूछतांछ ही की गई। उन सबको नौकरी में रखकर वेतन बराबर दिया जाता रहा।

तोपखाने की घटनाओं का वर्णन करते हुये सरकारी वकील ने बताया कि सवेरे ६ बजे बागी फौजों के दिल्ली पहुंचने के एक ही घण्टा बाद तोपखाने पर कब्जा करने और वहां पर मौजूद युरोपियनों को कैद करके किले में लाने की जो कोशिशें की गईं, उनसे प्रगट है कि यह सब उत्तेजना या आवेश में आकर नहीं किया गया, बल्कि ठंडे दिमाग से पहिले ही सोच-समझ कर किया गया था। अन्यथा, यह सारा काम इतनी खूबी और तेजी के साथ नहीं किया जा सकता था। बादशाह ने उसमें हाथ डालते हुये उसके परिणाम पर विचार किये बिना ही अपना जीवन और अपना सर्वस्व खतरे में नहीं डाल दिया था। तोपखाने पर कब्जा करने के लिये उसने एकाएक ही अपनी फौजें रवाना नहीं कर दी थीं। उसको यह भी पता होना चाहिये

था कि दूसरे स्थानों की फौजें क्या करने वाली हैं ? आम जनता में भी तरह तरह की अफवाहें फैलाई गई थीं। पश्चिम से पानी की एक बाढ़ के आने और बादशाह के सिवाय उसमें बाकी सब कुछ बह जाने की भी अफवाह उड़ाई गई थी। राजपुरोहित हसन असकरी ने इसका यह अर्थ लगाया था कि ईरान के बादशाह की ताकत के सामने सारे युरोपियन खत्म कर दिये जायेंगे और यहां का ताज बादशाह के सिर पर रखा जायगा। सिर्फ इन और ऐसी अफवाहों के पीछे इतना भीषण सैनिक विद्रोह यों ही खड़ा नहीं हो सकता था और हजारों की किस्मत यों ही खटाई में नहीं डाली जा सकती थी। तोपखाने पर तुरन्त किये गये आक्रमण से यह साफ है कि यह काम अकेले फौजियों का ही न था। बादशाह की अपनी फौज ने यह सब जिस ढंग से किया था, उससे प्रगट है कि उसमें किसका हाथ था ? बिना किसी सूचना, आदेश और निश्चित योजना के बादशाह की फौजें यह सब नहीं कर सकती थीं। भले ही राजा को ११ मई को होने वाली घटनाओं का पहिले से पता न हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि महल के प्रभावशाली लोगों को इस सबकी जानकारी जरूर थी। अंग्रेजों की हत्या की कल्पनामात्र से राजकुमार जवान बख्त को अत्यधिक प्रसन्न होने का और मतलब ही क्या था ? विद्रोह का सम्बन्ध केवल सिपाहियों ही के साथ न था और न उसका 'श्रीगणेश' ही केवल उनसे हुआ था। उसका सम्बन्ध सारे महल और सारे शहर के साथ था। बादशाह भी विद्रोह की इस लहर में बह गया। उसको आशा तो यह थी

कि वह हिन्दुस्तान की गद्दी का एक बार फिर मालिक बना दिया जायगा; किन्तु उसको असहाय बना कर टूटी-फूटी किश्ती के एक टुकड़े की तरह एक किनारे पर छोड़ दिया गया।

तोपखाने के हाथ से निकलने के बाद युरोपियनों के लिये पहला काम अपनी जान बचाना हो गया। इसी दृष्टि से दिल्ली को चौबीस घण्टों में ही खाली कर दिया गया था। बादशाह उसके बाद इस सारे नाटक का सूत्रधार बन गया। सभ्यता की विरोधी जंगली ताकतें इस नाटक को बड़ी दिलचस्पी के साथ देखने लगीं। ११ मई की दुपहर को बादशाह दीवानखास में आकर एक कुरसी पर बैठा। फौजी और अन्य अफसर उसके सामने उपस्थित हुये और उसने एक एक करके उन सबके सिर पर हाथ रखा। कैदी के वकील गुलाम अब्बास का कहना है कि यह समरोह सेना की राजभक्ति को स्वीकार कर उनको उनकी नौकरी का भरोसा दिलाने के लिये किया गया था। उसी दिन शहर में बादशाह की सत्ता कायम होने की घोषणा की गई थी और २१ तोपों की सलामी भी दी गई थी।

लेफ्टिनेण्ट गवर्नर के एजेण्ट और स्थानापन्न कमिश्नर मि० साण्डरस ने बताया है कि कैदी के पड़दादा शाह आलम ने मराहटों की कैद में रहते हुये १८०३ में अंग्रेजों द्वारा उनके पराल किये जाने पर उनकी शरण में आने की दरखास्त दी थी। उसे स्वीकार कर लिया गया था। तब से दिल्ली के नाममात्र के ये बादशाह अंग्रेजों के पेंशनयाफ्ता हैं। तब से इस परिवार के साथ कोई भी बुराई न करके सदा भलाई ही की गई। शाह

आलम को गद्दी से उतार कर उसकी आंखें भी निकाल ली गइ थीं। उसके साथ अत्यन्त अपमानास्पद व्यवहार किया जाता और उसको कठोर नजरबन्दी में रखा जाता था। लार्ड लेक ने इन मुसीबतों से उसका उद्धार किया। उसको प्रतिष्ठा और पेंशन दी गई। उसको उत्तराधिकारियों के साथ भी वैसा ही व्यवहार किया गया। लेकिन, उन्होंने आस्तीन के सांप की तरह उन्हींको डस लिया, जिन पर वे आश्रित थे।

सूबेदार मुहम्मद बख्त खां के नाम जारी किये गये बादशाह के हुक्म को, जो उसके अपने हाथ का लिखा हुआ बताया गया था, पेश करते हुये सरकारी वकील ने बचाव में दिये गये बयान की समीक्षा की। बादशाह के अपने को निर्दोष बताने को निराधार ठहराते हुये उसने कहा कि उसके बयान का गवाहियों से समर्थन नहीं होता। उन दिनों के समाचार-पत्रों से यह साफ है कि मिर्जा मुगल को प्रधान सेनापति बना कर इस ऊँचे पद पर बिठाया गया था। मौखिक गवाहियों के अलावा पत्र-व्यवहार के रूप में प्राप्त लिखी गवाहियों से भी यह सिद्ध है कि दिल्ली में अपने पिता के बाद विद्रोहियों का दूसरा मुख्य नेता उसका पुत्र मिर्जा मुगल ही था। नजफगढ़ के पुलिस अफसर मोलवी जफर-अली की दरख्वास्त पर कैदी ने अपने हाथों से हुक्म लिख कर अपने पुत्र मिर्जा मुगल को वहां सेनायें भेजने का आदेश दिया है। खुर्जा ुर के नवाब के पुत्र अमीर अली खां के १२ जुलाई के पत्र पर भी बादशाह ने अपने हाथों से पेन्सिल से लिख कर हुक्म जारी किया है।

सब मुसीबतों और चिन्ताओं से मुक्त करके बादशाह को लाखों पौण्ड की पेन्शन दी जा रही थी। इस नाते से भक्ति का प्रदर्शन और कर्तव्य का पालन न करते हुये इस बागी ने अपनी भलाई करने वालों की सरकार को उलटने और नष्टकरने का प्रयत्न किया। इस लड़खड़ाते हुये बूढ़े ने अपने जर्जर हाथों से मूर्खतापूर्ण विद्रोह और हत्याओं के करने वालों को प्रोत्साहन दिया। अपने को बादशाह घोषित करने के लिये शहर में ११ मई की दुपहर को ३ बजे ढोंडी पिटवाई। आधी रात में २१ तोपें दागी गई। मिर्जा मुगल को प्रधान सेनापति बनाकर शहर में उसका जलूस निकाला गया। १ जुलाई को सूबेदार मुहम्मद बख्त खां को गवर्नर जनरल और प्रधान सेनापति बना दिया गया। इस पर दोनों में ईर्ष्या भी पैदा हुई। लेकिन, जल्दी ही सुलह हो गई। दोनों ने बादशाह के साथ मिल कर फौजों का नियन्त्रण करना शुरू किया। १२ जुलाई को मुहम्मद बख्त खां ने शहर में एक हुक्म जारी करके अंग्रेजों से सम्बन्ध रखने या उनको रसद पहुंचाने आदि के बारे में सख्त चेतावनी दी और विद्रोह में साथ देने वालों को होने वाले नुकसान की भरपाई कर देने का भरोसा दिलाया। ६ सितम्बर १८५७ को बादशाह ने शहर के कोतवाल के पास एक हुक्म भेज कर उसको यह आदेश दिया कि शहर में ढोंडी पिटवा कर यह मुनादी करा दी जाय कि यह धर्म-युद्ध है। सब लोगों के लिये, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, चाहे वे शहर के हों या गाँवों के, चाहे वे हमारे से नाराज होकर दुश्मन के साथ ही क्यों न मिल गये हों, चाहे

वे अंग्रेज सेना में ही क्यों न हों, चाहे वे पूर्विये, सिख, पहाड़ी या नेपाली ही क्यों न हों, यह आवश्यक है कि वे अपने धर्म के प्रति सच्चे रहें और अंग्रेजों तथा उनके नौकरों को मार भगायें। यह भी मुनादी कर दी जाय कि जो आज अंग्रेजों का साथ दे रहे हैं, उन्हें डरने का कोई कारण नहीं है। शत्रु का साथ छोड़ने के बाद उनको पूरा संरक्षण दिया जायगा। यह भी ऐलान कर दिया जाय कि दुश्मन पर हमला करके जो भी सम्पत्ति जो कोई भी लूटेगा, वह उसी को दे दी जायगी और उसके अलावा भी उसको बहुत-सा इनाम दिया जायगा। इनके बाद और सबूत पेश करने की जरूरत नहीं है।

किले या महल में ४६ युरोपियनों की हत्या के बारे में, जिनमें अनेक स्त्रियां और बच्चे भी थे, अधिक कहने की जरूरत नहीं है। सब बातें अदालत के सामने आ चुकी हैं। वे इतनी भयानक हैं कि उनको सहज में भुलाया नहीं जा सकता। केवल यह दिखाना बाकी है कि इस खूंखार हत्याकाण्ड में इस क़ैदी का कितना गहरा हाथ है और बदमाशी से किये गये इस हत्याकांड में वह किस प्रकार सहायक हुआ है। उनकी गिरफ्तारी, उनको क़ैद में रखने के स्थान, वहां दी गई भीषण यातनायें, शुरू से ही उनके साथ किया गया अतिशय कठोर व्यवहार और उनके सिर पर लटका हुआ उनका दुर्भाग्यपूर्ण अन्त,—यह सब कितना भयानक था ? हकीम अहसान उल्ला खां ने इन बातों पर काफी प्रकाश डाला है। उसने बताया है कि पादशाह ने उनको कैद में रखने के लिये रसोईघर (बावर्चीखाने) का स्वयं निर्देश

किया था। उसमें स्त्री-पुरुष और बच्चे सब एक साथ बन्द कर दिये गये थे। मैंने उस स्थान को स्वयं देखा है। वह स्थान ४० फीट लम्बा, १२ फीट चौड़ा और केवल १० फीट ऊँचा है। वह पुराना, गन्दा और पुता हुआ भी नहीं है। न उसमें फर्श है, न खिड़की है और न हवा तथा रोशनी जाने का दूसरा ही कोई प्रबन्ध है। केवल एक दरवाजा लकड़ी का है। श्रीमती आल्डवेल ने बताया है कि हम सिपाहियों के डर से उस दर्वाजे को भी बन्द कर देने को मजबूर होते थे। इससे हम हवा और रोशनी से सर्वथा वंचित हो जाते थे। हमें बन्दूक और किरच का डर बताकर मुसलमान या गुलाम होने को धमकाया जाता था। बादशाह के अङ्गरक्षक तो यहां तक कहा करते थे कि हमारी बोटी बोटी काट कर कुत्तों और चीलों को खिला दी जायगी। भोजन भी बहुत खराब दिया जाता था। केवल दो बार बादशाह की ओर से कुछ अच्छा भोजन भेजा गया था। यह है वह बदला, जो इस बागी ने उस पर और उसके परिवार पर अंग्रेजों द्वारा खर्च किये गये लाखों रुपयों और राजमहल में रहने की सुविधा का दिया। गवाहों के अलावा इसके अपने हाथ के लिखे हुए ऐसे हुक्म भी हैं, जिनसे साफ पता चलता है कि बादशाह ने क़ैद का यह स्थान स्वयं तय किया, उसके अपने सशस्त्र आदमी वहां पहरे पर रहते थे, वही उनको रही खाना देता था और फिर उनसे मुसलमान बनने को कहा जाता था ? उसने उनको बचाने की कोशिश तो क्या, इच्छा तक नहीं की। इसने उनके प्रति साधारण दया या सहानुभूति तक का व्यवहार नहीं

किया। उनको यातनायें देने वालों को कभी टोका या रोका नहीं गया। उनको भोजन या पानी देने वाले को उलटी सजा दी जाती थी। गुलाब चपरासी ने अपने बयान में बताया है कि बादशाह या उसके लड़के मिर्जा मुगल के हुक्म के बिना यह हत्याकाण्ड हो नहीं सकता था और हत्याकाण्ड के समय उसके शिकार युरोपियनों को बादशाह के अंगरक्षकों ने चारों ओर से घेरा हुआ था। एक साथ तलवार उठाई जाती और तब तक चलती रहती, जब तक कि कैदी की जान न ले ली जाती थी। पत्रकार चुन्नीलाल का भी यही कहना है कि यह हत्याकाण्ड बादशाह के हुक्म से ही किया गया था। अपने मकान के छज्जे पर खड़ा होकर मिर्जा मुगल वह सब देख रहा था। बादशाह के सेक्रेटरी मुकुन्दलाल की गवाही से भी इस सब का समर्थन होता है। उसने बताया है कि मिर्जा मुगल के साथ बागी सिपाही इसके लिये हुक्म मांगने आये। मिर्जा मुगल और बसन्त अलीखां भीतर गाये और बीस मिनट बाद भीतर से निकलने पर बसन्त अलीखां ने बादशाह के हुक्म के मिलजाने का ऊंचे से ऐलान किया। इस पर बादशाह के अंगरक्षक उनको बाहर लाये और फौजियों ने उनकी हत्या की। १६ मई की कोर्ट डायरी में भी यह दर्ज है कि दीवानखास में बादशाह का दरबार लगा। ४६ युरोपियन कैदी थे। फौजी उनको मारना चाहते थे। बादशाह ने उनको उनके सिपुर्द यह कहते हुए कर दिया कि फौजी जैसा चाहें, वैसा बर्ताव उनके साथ करें। इसके बाद वे तलवार के घाट उतार दिये गये। दरबार में हाजरी कच्ची

थी। राजाओं, नवाबों, अफसरों आदि ने बादशाह के प्रति सम्मान प्रकट किया।

कच्छ भोज के राजा रावभाजा, जैसलमेर के राजा रणजीतसिंह और जम्मू के राजा गुलाबसिंह को बादशाह की ओर से भेजे गये पत्रों को पेश करके सरकारी वकील ने बताया कि उनको युरोपियनों की हत्या करने के लिये किस प्रकार प्रेरित किया गया था। अभियोगों के सम्बन्ध में अपने वक्तव्य को समाप्त करते हुए सरकारी वकील ने कहा कि अब यह अदालत के हाथ में है कि वह कैदी को राज्य से च्युत बादशाह की प्रतिष्ठा भोगने दे अथवा इतिहास के सबसे बड़े पापियों में उसकी गणना होने दे। अदालत को निर्णय करना है कि तैमूर राजघराने का यह अन्तिम बादशाह बापदादाओं के इस विशाल राजमहल से निकाला जायगा कि नहीं ? आपका निर्णय वर्तमान और भविष्य के लिये भी यह बता देगा कि बादशाह के साथ भी पाप करने के बाद किस प्रकार पापी का-सा व्यवहार किया जाता है और राजघराने की पुरानी शान एक दिन में सदा के लिये कैसे धूल में मिल जाती है।

विद्रोह के सामान्य कारणों और पहिले से रचे गये षड्यन्त्र पर प्रकाश डालते हुये सरकारी वकील ने कहा कि कलकत्ता से पेशावर तक फैली हुई छावनियों में गोली पर लगाई गई चर्बी को लेकर इतना भयानक और भीषण विद्रोह एकाएक नहीं फैल सकता था। आपस के गुप्त-समझौते और पहिले की तैयारी के बिना यह सम्भव ही न था। इसी का नाम है

षड्यन्त्र। उसके लिये गोलियों के मामले से चिंगारी का काम लिया गया। भले ही हम यह नहीं पता लगा सके कि इस षडयंत्र के पीछे किनका हाथ था, किन्तु यह स्पष्ट है कि मुसलमानों में असन्तोष घर करता जा रहा था और इससे उन लोगों ने लाभ उठाया, जो ऐसे मौके की खोज में थे। अवध के ब्रिटिश शासन में मिला लिये जाने से भी मुसलमानों में असन्तोष बढ़ा होगा। जाटमल ने गवाही में कहा है कि इस विद्रोह से मुसलमानों में तो जरूर आनन्द की लहर फैल गई, किन्तु हिन्दुओं को इससे दुःख हुआ। इसको मुस्लिम षड्यन्त्र ही कहा जाना चाहिये, भले ही हिन्दू और मुसलमान फौजी सब इसमें शामिल थे। विद्रोह से एक-दो मास पहिले सेनाओं में निजी पत्रों का आना-जाना बहुत बढ़ गया था। इससे तथा उस समय की अन्य परिस्थितियों से यह प्रगट है कि भीतर ही भीतर कुछ गोलमाल बहुत तेजी से चल रहा था। इसी समय इस विस्फोट के होने के अनेक कारण थे, जिनमें अवध का ब्रिटिश राज्य में मिलाया जाना, युरोपियन सभ्यता का फैलना, लोगों को अज्ञान के अंधकार में रखकर धर्मजीवी लोगों द्वारा खड़ी की गई स्वार्थ की दीवारों का तेजी से गिरना और उन धर्मों का नष्ट होना, जो नैसर्गिक विज्ञान की साधारण-सी रोशनी भी सहन नहीं कर सकते थे। विधवाओं के पुनर्विवाह को भी धर्मान्ध लोगों की भावनायें उभाड़ने में काम में लाया गया। जात और छूत-छात के कारण पहले हिंदुओं में परस्पर और हिंदुओं तथा मुसलमानों में भी आपस में कितना ही भेदभाव क्यों न रहा हो;

लेकिन, अंग्रेज सेनाओं में सब के एक साथ रहने से यह भेदभाव मिट गया। सेना ऐसा हथियार है कि उसको पैना करने वाले के विपरीत भी उसके प्रयोग होने में देर नहीं लगती। अंग्रेजों के साथ ऐसा ही हुआ। वे हिंदू भी विगड़ गये, जो हिन्दुओं के मुसलमान बनाये जाने पर भी कभी आवेश में न आते थे। इस षड्यन्त्र की कितने समय से तय्यारी की जा रही थी,—यह इसी से प्रगट है कि सीदी कम्बार को दो वर्ष पहले ईरान और कुस्तुनतुनिया पत्र देकर वहां से सहायता प्राप्त करने के लिये भेजा गया था और उसको इस समय तक लौट आने के लिये कहा गया था। मुसलमानों में अनेक अफवाहों में एक यह भी फैलाई गई थी कि प्लासी की १७५७ की लड़ाई के ठीक सौ बरस बाद अंग्रेजी राज यहां से मिट जायगा। धर्मान्ध मुसलमानों को भड़काया गया कि उनका पुराना वैभव फिर से कायम हो जायगा। बहुत-सी अफवाहें फैला कर बादशाह को भी यह विश्वास दिला दिया गया था कि ईरान का सम्राट फिर से हिंदुस्तान का ताज उसके सिर पर रख देगा। उसके लिये हर रोज बहुत सी दान-दक्षिणा दी जाकर विशेष प्रकार का पूजापाठ किया जाता था। मुहर्रम पर यह सब विशेष रूपसे किया गया था और अंग्रेजों के लिये बददुआयें मांगी गई थीं।

फौजों में भेजी गई चपातियों की चर्चा करते हुये सरकारी वकील ने कहा कि इनका उद्देश्य हिन्दुओं और मुसलमानों के भाईचारे को सुदृढ़ बना कर उनको एक धर्म और एक खान-पान के बन्धन में बांधना था। आटे में हड्डियों का चूरा मिलाने

की भी झूठी अफवाह उड़ाई गई थी। लेकिन, इस सबका भेद खुलने पर हिन्दू फौजियों ने मुसलमानों को कोसना शुरू कर दिया। हिन्दुओं ने सामूहिक रूप से न तो इसमें भाग लिया और न ब्राह्मणों या पुरोहितों ने वैसी अफवाहें ही फैलाई थीं। न उनका कोई राजा ही था, जिसको वे दिल्ली के तख्त पर फिर से बिठाते और न वे अपने धर्म का तलवार के जोर पर प्रचार ही करना चाहते थे। इसलिए इसे मुस्लिम षड़यन्त्र ही कहना चाहिये। उन दिनों के समाचारपत्रों में भी तरह तरह की अफवाहें उड़ाई गई। ईरान, फ्रांस, टर्की और रूस के हिन्दुस्तान पर हमला करने के किस्से-कहानियां समाचार-पत्रों में जनवरी १८५७ से ही प्रकाशित होनी शुरू हो गई थीं। अफगानिस्तान के साथ दोस्ती होने की भी बातें उड़ाई गई थीं। रूस के चार लाख सैनिकों और बहुत से गोला-बारूद से ईरान की मदद करने को भी समाचार फैलाये गये थे। राजमहल और शहर में भी ये खबरें बहुत चाव से पढ़ी जाती थीं। इसी से सभी समाचार-पत्रों ने काबुल में अपने सम्वाददाता रखे हुये थे। सिपाहियों में भी इसकी खुली चर्चा होती थी और कहा जाता था कि उत्तर से एक लाख रूसी सैनिक शीघ्र ही हिन्दुस्तान पर हमला करने वाले हैं, जिससे कम्पनी की हकूमत नष्ट हो जायगी। मुल्ला-मौलवियों की सपनों में घड़ी गई कहानियों, दरबार में रचे गये षड़यन्त्रों और समाचार-पत्रों में उड़ाई गई खबरों का एक साथ होना साधारण बात नहीं है। मुसलमानों में स्वाभिमान की भावना का पैदा करना, उनकी धर्मान्धता को प्रोत्साहन देना, धर्म-युद्ध के लिये उनको उभाड़ना

अदालत की ओर जाते हुये—चीफ़ आफ़ स्टाफ़ कर्नल शाहनवाज और मिलिटरी सेक्रेटरी मेजर प्रेम के सहगल।

और अंग्रेजों के लिये उनमें घृणा पैदा करना भी अकारण ही न था। यह भी पत्रोंमें प्रकाशित किया गया था कि पांच सौ ईरानी सिपाही दिल्ली में छिपे हुये हैं और तीन सौ ने हिन्दुस्तान पर हमला कर दिया है। सादिक खां नाम के एक आदमी ने जामा मसजिद पर ईरान के बादशाह का एक ऐलान भी चिपकाया था। इस पर एक ओर तलवार और दूसरी ओर ढाल बनाई गई थी। विद्रोह से पन्द्रह दिन पहिले मजिस्ट्रेट के पास एक गुमनाम दरख्वास्त भेजी गई थी, जिसमें बताया गया था कि काश्मीरी गेट जल्दी ही अंग्रेजों के हाथोंसे छीन लिया जायगा। सैनिक दृष्टि से इसका उस समय बहुत अधिक महत्व था। लोगों के विचारों का इससे पता चलता है। कैदी के प्रति लोगों में, जो धार्मिक और राजनीतिक श्रद्धा थी, उसीसे उसने लाभ उठाया और इस विद्रोह के लिये रचे गये षड्यन्त्र के लिये यह स्फूर्ति और प्रेरणा बन गया।

इस विद्रोह के लिये मुसलमानों में विशेष उत्कण्ठा थी। मिर्जा तकी बेग ने अंग्रेजों की नौकरी में होते हुए भी पेशावर में ब्रिटिश राज के शीघ्र नष्ट होने की खबरें उड़ाई। दिल्ली के तोपखाने के करीम बक्श ने भी अंग्रेजों की नौकरी में रहते हुए इधर-उधर फौजों में फारसी में पत्र भेज कर गोलियों में चर्बी लगने की बात फैलाई। तोपखाने पर हमला होने पर यह बागी फौजों से मिला हुआ था। ऐसी और घटनायें देने की जरूरत नहीं है। यह प्रगट है कि १८५७ की भीषण दुर्घटनाओं के पीछे मुसलमानों की गुप्त हरकतें और षड्यन्त्र था। राजद्रोह का लम्बा जाल बहुत पहले से फैलाया जा रहा था। कैदी ने अपने

प्रति मुसलमानों की अन्ध श्रद्धा से लाभ उठा कर अपने को इस षडयन्त्र का मुखिया बना लिया था। हिन्दुओं को चर्बी की। जिस बात पर बहकाया गया था, अम्बाला की छावनी में मुसलमान सिपाही त उसका मजाक उडाते थे। ऐसी किसी बात पर मुसलमानों ने हिन्दुओं का कभी भी साथ न दिया होता। हिन्दुओं को बाद में इसके लिए पछतावा भी हुआ और उन्होंने माफी माँग कर अंग्रेजों का साथ भी देना चाहा। आदि से अन्त तक यह सारा खेल मुसलमानों का रचा हुआ था। एक मुसलमान मौलवी ने सपने देखने और चमत्कार दिखाने का ढोंग रचा, बादशाह और उसके साथी भी मुसलमान ही थे, ईरान और तुर्की के मुसलमान बादशाहों के पास मुसलमान राजदूत को ही भेजा गया था, अंग्रेजी राज के नष्ट होने की भविष्यवाणियाँ भी मुसलमानों ने गढी थीं और उसके स्थान पर मुसलमा ी राज ही कायम किया जाने वाला था। खूनी हत्याकाण्ड करने वाले भी सब मुसलमान ही थे। मुसलमानों के लिए ही इसे धर्मयुद्ध का नाम दिया गया था। मुसलमानी समाचारपत्रों ने आग चारों ओर फैलाई और मुसलमान सिपाहियों ने ही पहिली चिंगारी सुलगाई। हिन्दुओं का हाथ इसमें कहीं भी दीख नहीं पड़ता। उन्होंने तो इसको दबाने का ही काम किया।

इस प्रकार इसको "मुसलिम षड्यन्त्र" बताते हुए अन्त में सरकारी वकील ने लोगों को जबरन ईसाई बनाये जाने की अफवाह का खण्डन किया और इस बारे में पैदा की गई आशंकाओं को निराधार बताया।

: ४ :

फैसला

९ मार्च १८५८ को अदालत ने यह फैसला दिया कि अदालत के सामने जो गवाहियाँ पेश की गई हैं, उनको देखते हुए उसकी यह सम्मति है कि दिल्ली के भूतपूर्व बादशाह कैदी मुहम्मद बहादुर शाह पर जो अभियोग लगाए गए हैं; उन सब में वह दोषी सिद्ध हो गया है।"

इस फैसले के अनुसार माण्डले में अंग्रेजों की कैद में नजरबन्द रह कर अपनी शेष आयु हिन्दुस्तान के अन्तिम बादशाह ने पूरी की। वहां ही उसकी समाध बनाई गई। उसी पर उपस्थित होकर देश के महान् क्रांतिकारी नेता श्रीसुभाषचन्द्र बोस ने उस महान् उद्योग का सूत्रपात किया था, जिसका अन्तिम पटाक्षेप फिर इसी लाल किले में हुआ और उस गौरव-पूर्ण एवं वीरतापूर्ण कहानी के अन्तिम पटाक्षेप की एक झांकी आगे पृष्ठों में दी जा रही है।

प्रति मुसलमानों की अन्ध श्रद्धा से लाभ उठा कर अपने को इस षडयन्त्र का मुखिया बना लिया था। हिन्दुओं को चर्बी की जिस बात पर बहकाया गया था, अम्बाला की छावनी में मुसलमान सिपाही तो उसका मजाक उड़ाते थे। ऐसी किसी बात पर मुसलमानों ने हिन्दुओं का कभी भी साथ न दिया होता। हिन्दुओं को बाद में इसके लिए पछतावा भी हुआ और उन्होंने माफी माँग कर अंग्रेजों का साथ भी देना चाहा। आदि से अन्त तक यह सारा खेल मुसलमानों का रचा हुआ था। एक मुसलमान मौलवी ने सपने देखने और चमत्कार दिखाने का ढोंग रचा, बादशाह और उसके साथी भी मुसलमान ही थे, ईरान और तुर्की के बादशाहों के पास मुसलमान राजदूत को ही भेजा

चलाए गए मुकदमे में [illegible] होने की भविष्यद्वाणी कहीं अधिक है। यह मुकदमा लाल किले में ५, नवम्बर को शुरू हुआ। इस सैनिक अदालत में सात जज थे, जिनमें चार अंग्रेज और तीन हिन्दुस्तानी थे।

सरकारी वकील थे भारत सरकार के एडवोकेट जनरल सर नोशेरवान पी० इंजिनियर और लैफ्टिनेंट कर्नल पी०व.ल्श। सफाई के वकीलों में हिन्दुस्तान के पहिली चोटी के सुप्रसिद्ध वकीलों और बैरिस्टरों के साथ दिल्ली के भी अनेक वकील थे। इनमें पंडित जवाहरलाल नेहरू, सर तेजबहादुर सप्रू, श्री भूलाभाई जे० देसाई, डा० कैलाशनाथ काटजू, रा०ब० बद्रीदास, श्री आसिफ अली, कुंवर सर दिलीपसिंह, बख्शी सर टेकचन्द और श्री बी० एन० सेन के नाम उल्लेखनीय हैं।

: २ :

अभियुक्त

आजाद हिन्द फौज के तीन अफसरों को बतौर अभियुक्त के इस अदालत में पेश किया गया था। उनके नाम व संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार हैं :—

कप्तान शाह नवाज खां

आपका जन्म २४ जनवरी १९१४ को रावलपिण्डी में हुआ। देहरादून के सैनिक विद्यालय में आपकी शिक्षा हुई। रायल नारफौक रेजीमेण्ट की पहली बटेलियन में भरती हुये। बारह मास बाद पंजाब रेजीमेंट में झेलम भेज दिये गये। फरवरी १९३६ में आपको स्थायी रूपसे कमिशन अफसर बनाया गया। अगस्त १९३९ में उसकी एक पलटन का कमाण्डर बना दिया गया। १३ जनवरी १९४२ को 'कप्तान' बना कर आपको स्वदेश के बाहर मोर्चे पर भेजा गया। १५ फरवरी १९४२ को सिंगापुर में आपको युद्धबन्दी बना लिया गया। आजाद हिंद फौजकी स्थापना और संगठन में आपने प्रारम्भ से ही विशेष हिस्सा लिया और

युद्धबंदी हिन्दुस्तानी सैनिकों तथा अफसरों को उसमें शामिल होने के लिये विशेष रूप से प्रेरित किया। पहली सितम्बर १६४२ को आप उसमें सेकण्ड लैफ्टिनेण्ट बनाये गये। ६ सितम्बर को मेजर, १५ अक्टूबर को लैफ्टिनेण्ट कर्नल और २६ नवम्बर को पैडेट्स ट्रेनिंग स्कूल के कमान-अफसर बनाये गये और सदर मुकाम में भेज दिये गये। १० अप्रैल १६४३ को आपको डाइरैक्टोरेट आफ मिलिटरी ब्यूरो में भेज दिया गया। १८ अप्रैल को आप जनरल स्टाफ के चीफ नियुक्त किये गये। जुलाई १६४५ में नेताजी सुभाष बाबू उनके सिंगापुर आने पर नं०१ गुरिल्ला रेजीमेण्ट का संगठन के नाम पर किया गया। आप उसके कमाण्डर नियुक्त किये गये। १६४४ के शुरू में आप नं० २ डिविजन के डिविजनल कमाण्डर नियुक्त किये गये। अक्टूबर १६४३ में आप फौज के साथ बर्मा आये। २१ फरवरी १६४५ को आपने युद्ध के मोर्चे पर प्रस्थान किया। १६ मई १६४५ को आप पेगू में गिरफ्तार किये गये। आजाद हिन्द सरकार के मन्त्रिमण्डल में भी आप सम्मिलित थे। मुकदमे से रिहाई पाने के बाद से आप नेताजी के सामने की गई प्रतिज्ञा को पूरा करने में लगे हुये हैं।

कप्तान प्रेमकुमार सहगल

२५ जनवरी १६१७ को होशियारपुर में आपका जन्म हुआ। पंजाब विश्वविद्यालय के टैकनीकल कालेज की पढ़ाई के बाद आप देहरादून के सैनिक विद्यालय में भरती हुये। १६३६ की पहिली फरवरी को आपको कमीशन अफसर बनाया गया। २४ फरवरी १६४० को बलूच रेजिमेण्ट में भरती हुये।

२७ अक्टूबर को सिंगापुर के लिये रवाना होकर ११ नवम्बर १६३० को वहां पहुंचे। १४ फरवरी १६४२ को जापानियों द्वारा युद्धबन्दी बनाये गये। आजाद हिन्द फौज के संगठन में आपका भी मुख्य हाथ रहा। १ सितम्बर १६४२ को आप सेकण्ड लेफ्टिनण्ट, ६ सितम्बर को कप्तान और १५ अक्टूबर को मेजर बनाये गये। २६ फरवरी १६४३ को आपको डाइरैक्टोरेट आफ मिलिटरी ब्यूरो में भेजा गया। १७ अप्रैल को आप मिलिटरी सेक्रेटरी नियुक्त किये गये। फरवरी १६४४ में आप सिंगापुर से रंगून आये। नं० ३ गुरिल्ला रेजीमेण्ट के तब आप कमाण्डर थे। मनीपुर-अराकान की लड़ाइयों में आपने विशेष हिस्सा लिया और स्वयं सेनाओं का नेतृत्व किया। २६ अप्रैल १६४५ को आप गिरफ्तार किये गये। रिहाई के बाद से आपने आजाद हिन्द फौज की डिफैन्स कमेटी का काम संभाला हुआ है। राष्ट्र के प्रति अपना कर्तव्य पालन करने में आप संलग्न हैं

लैफ्टिनेण्ट गुरुबक्षसिंह ढिलन

आप ४ अप्रैल १६१५ को लाहौर जिले के अलगोऊ स्थान में पैदा हुये। पंजाब विश्वविद्यालय के टैक्नीकल कालेज, नौगांव के कृष्णा कालेज और देहरादून के सैनिक विद्यालय में आपकी शिक्षा हुई। ३ अप्रैल १६४० को आपको कमीशन अफसर बनाया गया। ३० अप्रैल को आप पंजाब रेजिमेण्ट में भरती हुये। १५ फरवरी १६४२ को युद्धबन्दी बना लिये गये। आजाद हिन्द फौज के संगठन में आपने प्रमुख भाग लिया। १ सितम्बर १६४२ को आप सेकण्ड लैफ्टिनेण्ट, ६ सितम्बर को कप्तान और

१० अक्टूबर को मेजर बनाए गए। रसद और यातायात विभाग का आपको अफसर इनचार्ज बनाया गया। सितम्बर विभाग का आपको अफसर इनचार्ज बनाया गया। सितम्बर १९४४ को आप बर्मा आये। चौथी गुरिल्ला रेजिमेण्ट उर्फ नेहरू ब्रिगेड के आप कमाण्डर नियुक्त किए गए। इम्फाल के मोर्चे पर आपने लड़ाई में सक्रिय भाग लिया। ५ जुलाई १९४५ को आप गिरफ्तार किए गए। रिहाई के बाद आपने उत्तर भारत का दौरा किया। देश की आजादी के लिए किए गए संकल्प की पूर्ति में आपने अपने को लगा दिया है।

: ३ :

अभियोग

तीनों अभियुक्तों के विरुद्ध सामान्य अभियोग फौजी कानून की धारा ४१ के अनुसार बादशाह के विरुद्ध सिंगापुर, रंगून, पोपा, पहांग तथा बर्मा के अन्य स्थानों में सितम्बर १९४२ से २६ अप्रैल १९४५ के बीच युद्ध लड़ना था।

लैफ्टिनेण्ट ढिल्लन के विरुद्ध पोपा के आसपास ६ मार्च १९४५ के लगभग हरिसिंह, दुलीचन्द, दर्यावसिंह और धर्मसिंह की हत्या करने के चार अभियोग थे।

कप्तान शाह नवाजखां पर पोपा पहाड़ी या उसके आस-पास २९ मार्च १९४५ के लगभग खजीन शाह और आयासिंह द्वारा की गई मुहम्मद हुसैन की हत्या में सहायक तथा प्रेरक होने का अभियोग था।

पहिले अभियोग में धारा १२१ और बाकी अभियोगों में धारा ३०२ के अनुसार सजा दी जा सकती थी।

अभियुक्तों ने अपने को सब अभियोगों में सर्वथा निर्दोष बताया।

चर्चा करते हुए सरकारी वकील ने कहा कि लड़ाई जिस उद्देश्य से लड़ी गई, वह गौण है। कानून की नजरों में उससे अपराध कम नहीं हो जाता। राजभक्ति की अवहेलना करते हुए यह अपराध किया गया था। युद्धवन्दी होने पर भी वे इस राजभक्ति से मुक्त नहीं हो सकते थे। आजाद हिन्द फौज के अफसर की हैसियत से उसकी ओर से युद्ध करते हुए उन्होंने यह अपराध किया था। हिन्दुस्तानी सेना के सिपाहियों और अफसरों से यह सेना निम्न प्रकार संगठित की गई थी—

(१) सदर मुकाम,
(२) हिन्दुतानी फील्ड ग्रुप,
(३) शेरदिल गुरिल्ला ग्रुप,
(४) स्पेशल सर्विस ग्रुप,
(५) इण्टेलिजेंस ग्रुप (भेदिया दल) और
(६) री-इन्फोर्समेण्ट ग्रुप

शेरदिल गुरिल्ला ग्रुप में गान्धी गुरिल्ला रेजिमेण्ट, आजाद गुरिल्ला रेजिमेन्ट और नेहरू गुरिल्ला रेजिमेन्ट शामिल थी। सुभाषचन्द्र बोस के सिंगापुर आने पर दो तीन मास बाद नवम्बर १९४३ में नं० १ गुरिल्ला रेजिमेण्ट, जिसको बोस या सुभाष रेजिमेण्ट कहा जाता था, खड़ी की गई। कर्नल शाह नवाजखां इसके कमाण्डर नियुक्त किये गये। बाकी तीन रेजिमेण्टों गान्धी, आजाद तथा नेहरू को २-३-४ नम्बर दिया गया। इन सबका एक डिविजन बनाया

गया। नं.२ डिविजन में युद्धबन्दी और नागरिक शामिल थे। नं० ३ डिविजन में केवल नागरिक ही थे, जिनकी भरती मलाया में आजाद हिन्द संघ ने की थी।

१५ फरवरी १६४२ को सिंगापुर का पतन हुआ। १७ फरवरी को बहुत से युद्धबन्दियों को फरेर पार्क में ले जाया गया। कप्तान एम० एस० कियानी के कमान की दो रेजीमेण्ट भी इनमें थीं। जापानी अफसर मेजर फुजीवारा ने उनके सामने भाषण दिया। भारतीय सेना के कुछ अफसर और कप्तान मोहनसिंह भी उस समय उपस्थित थे। मेजर फुजीवारा को भारतीय सैनिकों को जापानियों की ओर करने के लिये सिंगापुर के पतन से पहिले ही नियुक्त कर दिया गया था। उसके और कप्तान मोहनसिंह के भाषण हुये। कप्तान मोहनसिंह ने कहा कि स्वदेश की आजादी के लिये लड़ने को हम आजाद हिन्द फौज खड़ी कर रहे हैं। तुमको उसमें शामिल होना चाहिये।

१६४२ की पहली अक्टूबर को आजाद हिन्द फौज खड़ी की गई थी। मार्च १६४२ में कप्तान शाह नवाजखां ने युद्धबंदी अफसरों के सामने भाषण देते हुए कहा कि कप्तान मोहनसिंह के सदर मुकाम में कान्फ्रेंस होकर यह निश्चय किया गया है कि हम सब हिन्दुस्तानी हैं, भले ही हमारा धर्म कुछ भी क्यों न हो, हमें स्वदेश की आजादी के लिये अवश्य लड़ना चाहिये। बंगकौक में जून १६४२ में एक बड़ी कान्फ्रेंस हुई। इसमें भारतीय सेना की अनेक रेजीमेण्टों के प्रतिनिधि

उनसे आजाद हिन्द फौज में भरती होने को कहा जाता रहा।

दिसम्बर १६४२ में मोहनसिंह और जापानियों में अनबन शुरु हुई। मोहनसिंह को उन्होंने गिरफ्तार कर लिया। १० फरवरी १६४३ को आजाद हिन्द फौज के अफसरों की कान्फ्रेंस हो कर एक प्रश्नावली तय्यार की गई। इनमें एक प्रश्न यह था कि क्या आप आजाद हिन्द फौज में भरती होंगे कि नहीं? इसका नकारात्मक उत्तर देने वालों को १३ फरवरी को रासबिहारी बोस के सामने पेश किया गया। वहां उनको एक विज्ञप्ति दी गई। इसमें अन्य बातों के साथ गांधीजी के तीन सप्ताह के उपवास और अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिये बाधित करने के आन्दोलन की भी चर्चा की गई थी और हिंदुस्तान की आजादी की लड़ाई में शामिल होने की अपील की गई थी। जनवरी १६४३ में फिर जोरों से भरती की गई।

अभियुक्तों ने भी इन सब में हिस्सा लिया। जनवरी-फरवरी १६४३ में कप्तान शाह नवाज ने फोर्ट डिक्सन में जाकर अफसरों, सूबेदारों और जमादारों के सामने भाषण दिया। अप्रैल-मई में वे पोर्ट स्वेटनहम में भाषण देने गये। बिदादरी कैम्प के सिनेमा हाल में जनवरी १६४३ में जापानी अफसर ईवाकुरु और रासबिहारी बोस के सामने लेफ्टिनेण्ट ढिल्लन ने भाषण दिया। मार्च १६४३ को मेजर धारे के साथ ढिल्लन कितरा और ताईपिंग आये। अभियुक्तों

ने आजाद हिंद फौज में भरती करने, उसके संगठन को सुदृढ़ बनाने और सम्राट की फौजों के विरुद्ध युद्ध करने का हुक्म देने के अलावा स्वयं भी युद्ध में भाग लिया। पूर्व-निश्चित योजना के अनुसार उन्होंने सम्राट के विरुद्ध युद्ध किया। भारतीय सेना के अस्त्र-शस्त्र और वर्दियां काम में लाई गई। उन पर आजाद हिन्द फौज के बिल्ले लगा लिये गये।

अगस्त १९४२ में लेफ्टिनेण्ट नाग ने आजाद हिन्द सरकार और फौज का कानून तय्यार किया। इसमें २४ कोडे तक मारने की सजा भी शामिल की गई। अगस्त १९४४ में कोडों की संख्या ४५ से ५० तक बढ़ा दी गई थी।

जनवरी १९४३ में एक शासन समिति का संगठन किया गया। इसकी ओर से भाषणों का भी प्रबन्ध किया जाता था। मई १९४३ के करीब "डाइरेक्टोरेट आफ मिलिटरी ब्यूरो" कायम किया गया। सहगल मिलिटरी सेक्रेटरी और शाह नवाज जनरल स्टाफ के चीफ नियुक्त किये गये।

२१ अक्टूबर १९४३ को सुभाषचन्द्र बोस का सिंगापुर में भाषण हुआ। उन्होंने आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की घोषणा की। जिन व्यक्तियों के नामों की घोषणा की गई, उनमें शाह नवाजखां का भी नाम था। ३१ अक्टूबर १९४४ को आजाद हिन्द सरकार की युद्ध समिति का संगठन किया गया।

मार्च १९४५ में जब कुछ लोग आजाद हिन्द फौज से ब्रिटिश सेना में मिलने लगे, तब सुभाषचन्द्र बोस ने उनको

गिरफ्तार करने और विद्रोह करने पर गोली तक मारने का हुक्म जारी किया।

मुकद्दमे में पेश की जाने वाली गवाही के बारे में सरकारी वकील ने कहा कि वह लिखित और मौखिक दोनों प्रकार की होगी। लिखित गवाही में अभियुक्तों के हस्ताक्षर के बहुत से कागज पेश किये जायेंगे। शाह नवाज के हस्ताक्षरों के कागजों का उल्लेख करते हुए सरकारी वकील ने बताया कि इनमें जापानी सन् का प्रयोग किया गया है। इसके प्रयोग करने का आदेश १४ मई १९४३ को निकाला गया था और १९४३ के स्थान में २६०३ लिखने को कहा गया था। युद्ध शुरू होने पर अपने साथ मिलने या आत्मसमर्पण करने वाले हिन्दुस्तानी सिपाहियों के साथ व्यवहार करने के सम्बन्ध में एक योजना शाह नवाज ने तय्यार की थी।

कप्तान सहगल ने मिलिटरी सेक्रेटरी की हैसियत से ५ सितम्बर १९४४ को एक हुक्म जारी किया था, जिसमें बताया था कि आजाद हिन्द फौज के अफसरों को बहादुरी के लिये क्या इनाम दिये जायेंगे ? विशेष वीरता दिखाने वालों और किसी अंग्रेज या अमेरिकन अफसर को गिरफ्तार करने वालों को 'तगमये शत्रुनाश' देने का ऐलान किया गया था।

१९४४ और १९४५ की कप्तान शाह नवाज की डायरियां भी, जो उनके अपने हाथ की लिखी हुई हैं, पेश की जायेंगी। इससे पता चलता है कि २७ जनवरी १९४४ को कप्तान शाह नवाज ने जापान के सर्वोच्च सेनापति से भारत की ओर अन्तिम कूच करने

लाल किले में—बन्दी हालत में पहली आजाद हिन्द फौज का संगठन करने वाले और उसके जी० ओ० सी० जनरल मोहन-सिंह और मेजर तथा क्वार्टर मास्टर जनरल गुरबख्शसिंह ढिल्लन ।

का आदेश प्राप्त किया था। ३० मार्च की डायरी में जापानियों के इकतर्फा व्यवहार की शिकायत दर्ज है।' ४ अप्रैल १९४४ की डायरी में दर्ज है कि कप्तान शाह नवाज ने इम्फाल पर हमला करने का निर्णय किया। ७ और १५ जुलाई १९४४ की डायरियों में राशन की कमी होने, चार गढ़वालियों के भूख से मरने और जापानियों के उपेक्षापूर्ण व्यवहार करने का उल्लेख है। भूख से लोगों के मक्खियों की तरह मरने, आत्मघात करने और जापानियों से कुछ भी सहायता न मिलने का भी उल्लेख किया गया है। ८ अगस्त १९४४ में तो यह भी दर्ज है कि जापानियों ने बीमारों के लिए कुछ भी सहायता न भेज कर उनको आत्म-हत्या तक करने की सलाह दी।

१९४५ की डायरी भी बहुत महत्वपूर्ण है। उसमें २१ फरवरी १९४५ में शाह नवाज के युद्ध के लिये पोपा की ओर कूच करने, नेताजी से मिलने और उनसे सब आदेश प्राप्त करने का उल्लेख है। फरवरी, मार्च, अप्रैल और मई १७ तक की डायरी में से अनेक उद्धरण देते हुए सरकारी वकील ने युद्ध के मोर्चे की कुछ घटनाओं, जापान के पराजय और शाह नवाज के गिरफ्तार होने की घटनाओं का उल्लेख किया। १७ मई का उद्धरण यह है कि "१६-१७ मई की रात को सीतापीजिक्स गांव में प्रवेश किया। १५ गज की दूरी से पंजाब रेजीमेण्ट के लोगों ने हम पर बुरी तरह गोलियां दागीं। हमारा पथप्रदर्शक मारा गया। मेरा थैला खो गया। रात जंगल में काटी। शाम को ६-बजे गिरफ्तार किया जाकर [illegible]

सदर मुकाम में लाया जाकर जेल में भेज दिया गया।"

कप्तान सहगल के हाथ के कागजों, हुक्मों, रिपोर्टों आदि की चर्चा करते हुए सरकारी वकील ने उनमें से कइयों को पढ़ कर सुनाया। आजाद हिन्द फौज के अफसरों और सैनिकों के शत्रु के साथ मिलने की ६ अप्रैल १९४५ की रिपोर्ट और २६ मार्च १९४४ को अफसरों को दिये गये नम्बरों और उनकी रेजीमेण्टों के बारे में जारी किये गये आदेश को पेश करने के बाद उनकी १९४५ की डायरी में से भी कुछ उद्धरण प्रस्तुत किए गए।

लैफ्टिनेण्ट ढिल्लन के हाथ की रिपोर्टों और युद्ध के मैदान में दिए गए हुक्मों का भी सरकारी वकील ने उल्लेख किया।

आजाद हिन्द फौज में तीनों के मान-सम्मान और ओहदों का विस्तार के साथ वर्णन करने के बाद सरकारी वकील ने कहा कि अभियुक्तों का युद्ध के साथ जो सम्बन्ध है, उसको देखते हुए अन्तिम दिनों में युद्ध क्याओकापडांग और पोपा के आस-पास लड़ा जा रहा था। तब तीनों अभियुक्त लड़ाई के मैदान में थे। वे सम्राट के विरुद्ध सेनाओं का संचालन करते हुए स्वयं भी युद्ध में भाग ले रहे थे। ४ मार्च १९४५ को पांचवीं गुरिल्ला रेजीमेण्ट ने दो जीप मोटरें और एक सेट वेतार के तार का अपने कब्जे में ले लिया था। दो अंग्रेज फौजी मारे गए थे। इनमें से एक जीप गाड़ी सहगल अपने काम में लाते थे। ५ मार्च की सहगल की डायरी में भी इसका उल्लेख है।

१६ मार्च १९४५ को लैफ्टिनेण्ट ढिल्लन की कमान में

लड़ने वाली चौथी गुरिल्ला रेजीमेण्ट की एक कम्पनी की. अंग्रेज सेना से क्याओकापडांग पर मुठभेड़ हुई। इसमें ६० से १०० तक फौजी थे। इनमें से छः मारे गए और ३५ गिरफ्तार किए गए। अंग्रेज फौज में चार गुरखे मारे गये और छः घायल हुए। इस मुठभेड़ की ढिल्लन के हाथ की १८ मार्च की रिपोर्ट है।

इस प्रकार युद्धविषयक पहिले अभियोग का विवेचन करने के बाद हत्याओं और उनमें सहायक होने के अभियोगों की सरकारी वकील ने मीमांसा करते हुए कहा कि सरकारी अभियोग यह है कि कप्तान सहगल ने चारों सिपाहियों को गोली से मारने का हुक्म दिया और लैफ्टिनेण्ट ढिल्लन ने उनको ६ अप्रैल १६४५ को गोली के घाट उतार दिया। इस बारे में ६ अप्रैल को लैफ्टिनेण्ट ढिल्लन की अपने हाथ की लिखी हुई रिपोर्ट है। २६ फरवरी को इन लोगों ने लड़ाई के मोर्चे पर शत्रु से जा मिलने और उससे सम्बन्ध कायम करने का यत्न किया था। आजाद हिन्द फौज के सिपहसालार की ओर से दी गई मृत्युदण्ड की सजा कप्तान सहगल ने स्वयं लिखी और उस पर ६ अप्रैल १६४५ की तारीख है। लैफ्टिनेण्ट ढिल्लन के भी उस पर हस्ताक्षर हैं। अप्रैल १६ के आदेश-पत्र में भी यह दर्ज है कि कप्तान सहगल ने ६ मई को मृत्युदण्ड की सजा दी और ५ अप्रैल की शाम को ७ बजे वह सजा दे दी गई। मौखिक गवाही से यह बताया जायगा कि इन चारों के हाथ पीछे बांध कर ६ मार्च को लाया गया और एक खाई में बिठा दिया गया। लैफ्टिनेण्ट ढिल्लन ने भाषण दिया और बताया कि अंग्रेजों के

साथ मिलने के लिए कोशिश करने के अपराध में इनको मृत्यु की सजा दी गई है और अब ये गोली के घाट उतारे जायेंगे। उनमें से एक को बाहर लाकर लैफ्टिनेंटने फिर एक छोटा-सा भाषण दिया और उसकी प्रार्थना को सुने बिना ही हिदायतुल्ला को गोली चलाने का हुक्म दे दिया। इस पर उसने गोली दाग दी और वह गिर कर मर गया। दूसरे को भी इसी तरह हिदायतुल्ला ने और तीसरे व चौथे को काल्‌राम ने गोली से मार गिराया। वे अधमरी हालत में थे कि शेरसिंह को उन पर पिस्तौल से वार करने का लैफ्टिनेण्ट ढिल्लन ने हुक्म दिया। पिस्तौल दागी गई। लैफ्टिनेण्ट ढिल्लन ने फिर सबको भविष्य के लिए सावधान करते हुये भाषण दिया और चारों की लाशें खाई में गाड़ दी गईं।

कप्तान शाह नवाज पर मुहम्मद हुसैन की हत्या में सहायक होने का आरोप है। इसके सम्बन्ध में लिखित प्रमाण तो नहीं है। पर, मौखिक गवाही से पता चलेगा कि उस पर फौजियों को अंग्रेजों से मिल जाने के लिए भड़काने का आरोप लगाया गया था। इसके लिए उसको गोली से उड़ाने की सजा दी गई थी। मुहम्मद हुसैन ने माफी मांगी, पर स्वीकार नहीं की गई। खजिनशाह के हुक्म से उसको एक नाले पर ले जाया गया। वहां उसके लिये कबर खोदी जा रही थी। वहां उसकी आंखें बन्द करके उसको पेड़ से बांधा गया। एक सिक्ख, एक मद्रासी और अयासिंह को उस पर गोली चलाने का हुक्म खजिनशाह ने दिया। तीनों की गोली खा कर वह जमीन पर गिर पड़ा। यदि अभियुक्त अपने को निर्दोष मानते हैं,

तो यह उनको सिद्ध करना होगा। विद्रोह के काम में विद्रोहियों का साथ देने और दुश्मनी के काम में दुश्मन का साथ देने वाले बागी ही ठहराये जायेंगे। विश्वासघात करने वाला व्यक्ति उसके बाद किये जाने वाले कार्यों की घातक जिम्मेवारी से बच नहीं सकता। बागी कमान के आदेश पर यदि कोई काम किया जाता है, तो उस आदेश का पालन करना भी बगावत में ही शामिल है।

आजाद हिन्द फौज के कानून का सहारा लेकर भी अभियुक्त कानूनी दायित्व से बच नहीं सकते। उस कानून से प्राप्त की गई सत्ता को इस देश की कोई भी अदालत स्वीकार नहीं कर सकती। यह सत्ता मूल से ही गैरकानूनी है। उसके आधार पर काम करने वाले सरकार के विरुद्ध किए गए अपराधों के लिये दोषी हैं और उनको उसके लिए दण्ड दिया जाना जरूरी है। आजाद हिन्द सरकार के कानून से स्थापित की गई सत्ता का कुछ भी आधार नहीं है। उसके सहारे आदेश देने और उन आदेशों को मानने वाले उसकी आड़ में अपने को अपराधी होने से बचा नहीं सकते।

सरकारी गवाह

पहले सरकारी गवाह लेफ्टिनेण्ट कर्नल पी० वाल्श ने तीनों अभियुक्तों के नौकरी के रिकार्ड पेश किये। उनके कमीशन अफसर बनाये जाने के गजट की प्रतियां भी उसने अदालत में पेश कीं।

दूसरे गवाह डा० डी० सी० नाग बंगाल के निवासी थे। १९१५ में ग्रेज्युएट होकर आप सिविल सर्विस में भरती हुए थे। १९३४ में पहिले दर्जे के मजिस्ट्रेट बनाये गये और बाद में कमीशन अफसर बना दिये गये। १९४१ के मार्च मास में आपको सिंगापुर भेजा गया था और जापानियों द्वारा की गई युद्ध-घोषणा के समय आप पेकांग में थे। अपनी लम्बी गवाही में आपने कहा कि मैं १५ फरवरी को सिंगापुर में था। हवाई हमले में घायल हो जाने पर मुझे शहरी और बाद में फौजी अस्पताल में भेज दिया गया।

स्वस्थ होने पर नोसून कैम्प में भेजा गया। यहां मैंने लैफ्टिनेण्ट कर्नल चैटर्जी का एक भाषण सुना। हिन्दुस्तानी और जापानी अफसर प्रायः व्याख्यान देने आया करते थे। तब मुझे आजाद हिन्द फौज के सँगठन का पता मिला। इसका उद्देश्य हिन्दुस्तान को अंग्रेजों के हाथों से आजाद करना था। कप्तान शाह-नवाजखां से पहली बार मैं नोसून कैम्प में मिला। मैं उनको पहचानता हूँ। मोहनसिंह के कहने पर मुझे बिदादरी कैम्प में भेज दिया गया। वहां मुझे आजाद हिन्द फौज का कानूनी महकमा सौंपा गया। मैंने सबसे पहले उस.। विधान तय्यार किया। पंजाब रेजीमेण्ट के श्री के० माथुर मेरे सहायक थे। कई दस्तावेज पेश किये जाने के बाद गवाह के बताया कि सितम्बर १६४३ के शुरू में आजाद हिंद फौज में सिपाहियों की संख्या दस हजार थी। उनके पास रायफलें, बंदूकें, पिस्तौलें तथा अन्य शस्त्रास्त्र और गाड़ियां भी थीं। यह सब अंग्रेजी सामान था। अंग्रेजी वर्दी पर आजाद हिंद फौज के बिल्ले लगा लिये गये थे। बहुत से बिल्ले अदालत में पेश किए गए। आगे गवाह ने कहा कि कप्तान मोहनसिंह द्वारा बनाई गई फौज के लिये एक युद्ध समिति बनाई गई थी। श्री रासबिहारी बोस उसके प्रधान थे। छः सदस्यों में कप्तान मोहनसिंह, कर्नल गिलानी और कर्नल भोंसले फौज के तथा श्री मैनन, श्री राघवन और श्री गोहो जनता के प्रतिनिधि थे। दिसम्बर १६४२ में कुछ मतभेद होने पर कप्तान मोहनसिंह को जापानियों ने गिरफ्तार

कर लिया था। इसके बाद एक प्रबन्ध समिति का गठन किया गया। इसके प्रधान थे कर्नल भोंसले और सदस्य थे कप्तान एम० जैड० कियानी, लेफ्टिनेण्ट कर्नल लोकनाथन और मेजर प्रकाशचन्द्र। इसका काम सैनिकों में अनुशासन एवं नियन्त्रण बनाये रखकर उनकी नैतिकता को बनाये रखना था। यह निश्चय किया गया कि कप्तान मोहनसिंह की गिरफ्तारी के बाद भी फौज का काम जारी रखना चाहिए। अफसरों को भी इसमें शामिल होने के लिये प्रेरित किया गया। मैं फौज में भरती नहीं होना चाहता था। श्री रासबिहारी बोस के कहने पर भी जब मैं सहमत न हुआ, तब मुझे जापानी अफसर मेजर ओगावा को सौंप दिया गया। कैम्प में स्वास्थ्य बिगड़ने पर मैं मई १९४३ में फौज में भरती हो गया और मैंने अपना पुराना काम संभाल लिया। इस समय व्यवस्था कुछ बदली हुई थी। प्रबन्धसमिति की ओर से लैफ्टिनेण्ट कर्नल भोंसले सब व्यवस्था के अध्यक्ष थे। सेना की व्यवस्था कप्तान शाह नवाज, कप्तान सहगल और कप्तान अब्दुल रशीद के हाथों में थी। एम० जैड० कियानी सेना के कमाण्डर थे। फौज की टुकड़ियों के नाम बदल दिए गए थे।

जुलाई १९४३ में श्री सुभाषचन्द्र बोस सिंगापुर आ गये। आते ही फौज का सारा नियन्त्रण उनके हाथों में दे दिया गया और उनको सिपहसालार बना दिया गया। "इण्डियन

इण्डिपेंडेंस लीग" के भी वे प्रधान बनाये गये। २५ अगस्त को उन्होंने निम्न आशय का विशेष आदेश जारी किया :—

"एक हिन्दुस्तानी के लिए स्वदेश की आजादी के निमित्त खड़ी की गई फौज का सिपहसालार बनना प्रसन्नता, अभिमान और गौरव की बात है। जो काम आज मैंने अपने हाथों में लिया है, उसकी गुरुतर जिम्मेवारी से मैं भलीभांति परिचित हूं। सर्वशक्तिमान् प्रभु से मैं प्रार्थना करता हूं कि वह मुझे ऐसी शक्ति दे कि मैं अत्यन्त संकट और विपत्ति में भी हिन्दुस्तानियों के प्रति अपने कर्तव्य को पूरी तरह निभा सकूं। मैं विभिन्न धार्मिक मतों एवं सम्प्रदायों के चालीस करोड़ हिन्दुस्तानियों का अपने को विनीत सेवक मानता हूँ। मैं अपने कर्तव्य का पालन इस प्रकार करूंगा कि इन चालीस करोड़ भारतीयों का भाग्य मेरे हाथों में सर्वथा सुरक्षित रहे और मैं प्रत्येक भारतीय का अपने प्रति पूरा विश्वास सम्पादन कर सकूं। अदम्य राष्ट्रीय भावना और पक्षपातशून्य न्याय के आधार पर ही आजाद हिन्द फौज का गठन संभव है। मातृभूमि की गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाइयों तथा आजाद हिन्द सरकार की स्थापना के लिए चालीस करोड़ भारतीयों की शुभ कामनायें आवश्यक हैं। हिन्द की आजादी के लिए तत्पर रहने वाली स्थायी सेना के गठन में आजाद हिन्द फौज के फौजियों को महत्वपूर्ण भाग लेना है। अपने इसी पवित्र उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें इसमें शामिल होना है। हिन्द की आजादी इसका एकमात्र लक्ष्य है और उसके लिए कुछ करने या मर मिटने की

साथ ही उसकी शक्ति है। विकट संकटों के समय हमारी यह फौज अभेद्य दीवार साबित हो और हमारी प्रगति के मार्ग को यह प्रशस्त एवं निष्कण्टक बनाने वाली सिद्ध हो। हमारा कार्य महान् है। हमारी लड़ाई बहुत लम्बी और मुसीबतों से भरी हुई है। अपने देश की अन्तिम स्वतन्त्रता और न्याय में मेरी दृढ़ श्रद्धा है। संसार की जन-संख्या के पंचमांश चालीस करोड़ इन्सानों का भी आजाद होने का जन्मसिद्ध अधिकार है। अपनी इस आजादी का मूल्य चुकाने को हम कटिबद्ध हैं। संसार की कोई भी ताकत अब हमें अपने इस जन्मसिद्ध अधिकार से वंचित नहीं रख सकती। सैनिको, अफसरो और साथियो! आपकी निरंतर सहायता और अटूट देशभक्ति से प्रेरित होकर ही आजाद हिन्द फौज हिन्द की आजादी के प्राप्त करने में समुचित साधन बन सकती है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि हमारी अंतिम विजय सुनिश्चित है। हमारी आजादी की लड़ाई शुरू हो चुकी है। 'चलो दिल्ली' के गगनभेदी जयघोष के साथ अपनी लड़ाई जारी रखते हुए नई दिल्ली के वायसराय भवन पर राष्ट्रीय झंडा फहराना और प्राचीन ऐतिहासिक लाल किले में विजय महोत्सव मनाना हमारा निश्चित लक्ष्य है।"

दूसरे दिन ६ नवम्बर को अपना बयान जारी रखते हुए गवाह ने कहा कि आजाद हिन्द फौज के सदर मुकाम के शासन विभाग के अध्यक्ष कप्तान हबीबुररहमान ने मुझे आजाद हिन्द फौज का विधान बनाने को कहा था।

हैदराबाद रेजीमेण्ट के कप्तान दिलसुख ने भी कहा था। इण्डियन आर्मी एक्ट के आधार पर इसको बनाया गया था। कोड़े मारने की सजा देने की धारा ४५ के सम्बन्ध में काफी बहस होने पर गवाह ने बताया कि उसमें समय समय पर तब्दीलियां की जाती रहीं और कोड़ों की संख्या ५० तक कर दी गई। आजाद हिंद फौज की टुकड़ियों के गठन और नाम आदि का ब्यौरा देने के बाद गवाह ने बताया कि उसके सैनिकों की संख्या चालीस हजार तक पहुंच गई थी। उसमें आधे युद्धबन्दी और आधे मलाया में बसे हुए हिंदुस्तानी थे। सुभाष बोस के सिंगापुर में आने के बाद २५ अक्टूबर १९४३ को केफ बिल्डिंग में एक महत्वपूर्ण बैठक हुई। इसमें पांच हजार हिन्दुस्तानी शामिल हुये। तमाम पूर्वीय देशों के हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि भी इसमें उपस्थित थे। कुछ जापानी अफसर भी थे। सुभाष बाबू ने आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की इस सभा में घोषणा की। फरवरी १९४४ में आजाद हिन्द फौज का सदर मुकाम रंगून में लाया गया और सिंगापुर में भी एक सदर मुकाम कायम रखा गया। ३१ मार्च १९४४ को मैं रंगून आया। मिलिटरी सेक्रटरी कप्तान सहगल ने मुझे मेमयो जाने का आदेश दिया। १० अप्रैल को मैं वहां पहुंच गया। इस समय आजाद हिन्द सेना मनीपुर और अराकान के युद्ध-क्षेत्र में फैल गई थी। चौथी रेजीमेण्ट अभी मांडले में ही थी। अधिकृत प्रदेश के नामजद गवर्नर लैफ्टिनेण्ट चैटर्जी ने मुझे ऐसे प्रदेश के लिये बनाये गये कानून तथा योजनाओं को देखने के लिए कहा।

तब सुभाष बोस भी मेमयो ही में थे। पराजित होने के बाद आजाद हिन्द फौज ने जुलाई १६४४ में माण्डले से लौटना शुरू किया। अप्रैल १६४५ में लड़ाई जोरों पर थी। दूसरी डिविजन पोपा पहाड़ी पर पकाडांग में और पहिली डिविजन रंगून-मांडले के मार्ग जियावाड़ी में पिनमाना में डटी हुई थी। रंगून में छः हजार सैनिक होने पर भी उनके पास शस्त्रास्त्र का अभाव था। रंगून में आजाद हिन्द फौज के प्रवेश करने पर उसका रिकार्ड नष्ट कर दिया गया था। आजाद हिन्द फौज के साथ जापानी अफसरों का सम्बन्ध कायम रखने वाले संगठनों के नाम 'इवा कोरु कीकन' और 'ठिकरी किक्यान' थे।

फौज की प्रबन्ध-समिति में मैंने कप्तान शाह नवाज खां के साथ काम किया था। शाह नवाज खां जनरल स्टाफ के प्रधान थे। बाद में छापामार दल के सेनापति बना दिये गये थे। कप्तान सहगल सेनाविभाग में थे। वहां उनको मेजर बनाया गया। फरवरी १६४५ के अन्त तक उन्होंने मिलिटरी सेक्रेटरी का भी काम किया। उसके बाद 'डी० ए० जी०' का काम भी उनको सौंपा गया। फरवरी १६४५ में उनको दूसरी डिविजन की दूसरी पैदल सेना का सेनापति नियुक्त किया गया। लैफ्टिनेण्ट ढिल्लन से मेरा परिचय नीलून कैम्प में, मार्च १६४२ में हुआ। सितम्बर १६४२ में वे फौज के सदर मुकाम में चले गये। रसद और यातायात विभाग के वे अध्यक्ष भी रहे। मई १६४३ में वे बिदादरी कैम्प में थे। पहली डिविजन की पहली पैदल सेना के वे अक्टूबर १६४३ में सेनापति नियुक्त किये

गये और उनको मेजर का पद दिया गया। सितम्बर १६४४ में छापामार टुकड़ी का सेनापति बनाकर माण्डले भेज दिया गया।

डा० नाग की गवाही के बाद अदालत की कार्यवाही मुल्तवी करने के सम्बन्ध में बहस होकर १५ दिन के लिये उसे मुल्तवी कर दिया गया।

२१ नवम्बर को सफाई के वकील श्री भूलाभाई देसाई द्वारा जिरह किए जाने पर डाक्टर नाग ने फिर बताया कि सितम्बर १६४२ से मई १६४५ तक मैं आजाद हिन्द फौज का सदस्य रहा। फरवरी १६४३ में दुबारा फौज का संगठन किया गया। मैं मई १६४३ में फिर इसमें शामिल हो गया। इसमें मैंने जज एडवोकेट जनरल और डिपुटी एडजेण्ट जनरल के पदों पर काम किया। मैं उसके न्यायविभाग का अफसर था। आजाद हिन्द फौज का विधान बनाने के बाद मेरा मुख्य काम था—सेना की कानूनी व्यवस्था तथा मुकदमों का निरीक्षण करना। कानूनी सलाहकार का काम भी मेरे आधीन था। २१ अक्टूबर १६४३ को आजाद हिन्द की अस्थायी सरकार का गठन होने पर मुझे केवल कानूनी सलाहकार का काम सौंपा गया था। आजाद हिन्द सरकार के कानूनी सलाहकार थे श्री सरकार। वे बंगाल में सिविल सर्विस में थे। जापान की युद्ध-घोषणा के बाद की पेनांग और सिंगापुर में घटी घटनाओं का उल्लेख करते हुए गवाह ने आजाद हिन्द फौज के विधान बनाने और उसके 'एडवोकेट जनरल' के पद पर स्वेच्छा से नियुक्त होने की बात कही। गवाह ने कहा कि आजाद हिन्द फौज एक सुसंगठित सेना थी।

उसका सब काम कानून एवं विधान के अनुसार होता था। आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की घोषणा के समय २१ अक्टूबर १६४३ की सभा में मैं उपस्थित था। 'आजाद हिन्द संघ' की शाखायें मलाया और वर्मा में प्रायः सब जगह थीं। इस सभा में इन शाखाओं के निर्वाचित प्रतिनिधि भी उपस्थित थे। पूर्वीय एशिया में २५ लाख हिन्दुस्तानी रहते थे। सुभाष बाबू 'नेताजी' के नाम से प्रसिद्ध थे। अस्थायी आजाद हिन्द सरकार के मन्त्रियों ने इस सभा में शपथ ली और सबने इस सरकार को मंजूर किया। सुभाष बाबू ने स्वयं घोषणा-पत्र पढ़ा था। वह रिकार्ड में रखा गया था। १६४४ के शुरू में अजाद हिन्द बैंक की स्थापना की गई थी। हिन्दुस्तानियों ने इसके लिये खूब रुपया दिया। अर्थव्यवस्था आर्थविभाग के आधीन थी। पहिले कर्नल चैटर्जी और बाद में श्री राघवन अर्थमन्त्री नियुक्त किये गए थे। सेना को वेतन नियमित रूप से दिया जाता था। अधिकृत प्रदेश की व्यवस्था के लिये "आजाद हिन्द दल" का गठन किया गया था। इसमें सिर्फ नागरिक ही भरती किये जाते थे। अण्डेमान और निकोबार का शासन अस्थायी आजाद हिन्द सरकार के हाथों में दे दिया गया था। लैफ्टिनेण्ट कर्नल लोकनायन और बाद में मेजर आलवी वहां के चीफ कमिश्नर नियुक्त किये गये थे। जापानी और आजाद-हिन्द फौज में परस्पर मित्रसेनाओं का सम्बन्ध था। अमेरिका और इंग्लैण्ड के विरुद्ध नियमित रूप से युद्ध-घोषणा की गई थी। श्री हाचिया जापान सरकार की ओर से आजाद हिन्द सरकार के

यहां दूत थे। जर्मनी, इटली, जापान, थाईलैण्ड, फिलिपाइन और मंचूकुओ की सरकारों ने इसे स्वीकार किया था। वर्मा सरकार द्वारा भी इसे स्वीकार किया गया था। वर्मा सरकार की सेना के सेनापति जनरल श्रोंग सान थे। श्राजाद हिन्द सरकार ने आजाद हिन्द फ़ौज की सहायता से पूर्वीय एशिया के विभिन्न देशों में रहने वाले भारतीयों के जान, माल और सम्मान की रक्षा की थी। सिंगापुर के पतन के बाद हिन्दुस्तानी युद्ध-बन्दियों के लिये नीसून, विदादरी, सिलेटर, बुलार और क्रांजी में मुख्य कैम्प बनाये गये थे। अस्पतालों का भी प्रबन्ध था, जिनमें एक हजार रोगी रह सकते थे।

आजाद हिन्द फौज के गठन के सम्बन्ध में दिये गये कप्तान मोहनसिंह के एक भाषण की चर्चा करते हुए गवाह ने कहा कि यह भावना शुरू से ही बहुत प्रबल थी कि आजाद हिन्द फौज को जापानियों के आधीन न किया जायगा और जरूरत पड़ने पर उनसे भी लोहा लिया जायगा। उसका मुख्य लक्ष्य अपने देश की आजादी था। सुभाष बोस के रूपमें उनको ऐसा नेता मिल गया था कि उसके रहते वे जापानियों के हाथों में खेल नहीं सकते थे। युद्ध के मैदान में दोनों सेनाओं ने मिलकर मित्रता के समान नाते से भाग लिया। फौज के सारे अफसर और शिक्षक हिन्दुस्तानी थे। तिरंगा झण्डा उसका झण्डा था। उसके बिल्ले सर्वथा अपने ही थे। सुभाष बाबू के एक भाषण की चर्चा करते हुए गवाह ने कहा कि फौज में भरती होने के लिये किसी पर जोर-जबरदस्ती न की जा कर सब काम स्वेच्छा से होता था।

उनका यह निश्चित मत था कि हिन्द की आजादी हिन्दुस्तानियों के अपने प्रयत्न और बलिदान से ही प्राप्त हो सकेगी। फौज का राष्ट्रीय गीत "वन्देमातरम्" था। बाद में और भी गीत अपनाये गए। सिंगापुर से 'जयहिन्द' या 'आजाद हिन्द' नाम का पत्र भी निकलता था। फौज में लैफ्टिनेण्ट का वेतन ८०), कप्तान का १२५), मेजर का मलाया में १८०), वर्मा में २३०) और कर्नल का ४००) था।

तीसरे सरकारी गवाह के० धारलकर ने २२ नवम्बर को गवाही देते हुए सिंगापुर के पतन के बाद किए गए आत्म-समर्पण और नीसून तथा विदादरी कैम्पों का वर्णन करते हुए कहा कि वहाँ का व्यवहार बहुत अच्छा था। कभी किसी को पीटा नहीं गया।

चौथे सरकारी गवाह सूबेदार मेजर बाबूराम ने सिंगापुर के पतन के बाद फेरेर पार्क की सभा, लैफ्टिनेण्ट कर्नल हण्ट के हिन्दुस्तानी युद्धबन्दियों को जापानियों के हाथों में सौंपने, उसके भाषण, मेजर फूजीवारा द्वारा कप्तान मोहनसिंह की 'जी० ओ० सी०' के पद पर की गई नियुक्ति और कप्तान मोहनसिंह के आजाद हिन्द फौज की स्थापना के सम्बन्ध में दिए गए भाषण की चर्चा विस्तार से करने के बाद बताया कि उस समय लोगों में इसके लिए कितना उत्साह था। कप्तान मोहनसिंह ने कहा कि आजादी केवल प्रदर्शनों और नारों से नहीं मिल सकती। मलाया में अच्छी तरह न लड़ने का हम पर दोषारोपण किया जाता है, किन्तु हम लड़ते किन हथियारों से? हमारे पास था क्या?

लैफ्टिनेन्ट ढिल्लन और कर्नल शाहनवाज खां से अपना परिचय बताते हुए गवाह ने बिदादरी और बंगकौक में सम्मेलनों में स्वीकृत प्रस्तावों का व्यौरा उपस्थित किया और बताया कि मैं स्वेच्छा से इस फौज में भरती हुआ था। आत्मसमर्पण के समय के सारे शस्त्रास्त्र जापानियों ने हमको दे दिए थे। अभियुक्तों के वकील श्री देसाई द्वारा जिरह किए जाने पर गवाह ने बताया कि नीसून कैम्प में कप्तान शाह नवाज खां के प्रबन्ध में फौज में भरती होने या न होने वालों को एक-सा ही भोजन दिया जाता और उनके साथ व्यवहार भी एक-सा होता था। व्यवस्था बहुत अच्छी थी। चिकित्सा की व्यवस्था भी ठीक थी। उसके लिए २५०० डालर का प्रबन्ध किया गया था। बंगकौक सम्मेलन के प्रस्तावों की चर्चा भी गवाह ने की। जज एडवोकेट के प्रश्न का उत्तर देते हुए गवाह ने कहा कि आजाद हिन्द फौज का उद्देश्य हिन्द की आजादी होने से मैं उसमें शामिल हुआ था। जब जापानियों ने हिन्दुस्तान पर हमला करने के लिये हमें अपने हाथ की कठपुतली बनाना चाहा, तभी कप्तान मोहनसिंह और जापानियों में ठन गई और कप्तान मोहनसिंह की गिरफ्तारी के बाद उसको भंग कर दिया गया।

पांचवें सरकारी गवाह जमादार अल्ताफ रजाक ने बताया कि मैं छापामार दल में था, जिसके सेनापति कप्तान सहगल थे। आजाद हिन्द फौज के गठन का वर्णन करते हुए उसने कहा कि जब हमने मोर्चे के लिए प्रयाण किया, तब सुभाष बाबू ने हमारी सेना का निरीक्षण किया और राष्ट्रीय झंडे को सलामी

के बाद भाषण देते हुए कहा कि जिन्हें लड़ाई के मैदान में आगे बढ़ने में किसी भी प्रकार का संकोच है, वे पीछे हट जांय। यह समारोह मिगलडान में होने के बाद हम लोग प्रोम और पोपा पहुँचे। कप्तान सहगल भी वहां आ गए। नेहरू रेजीमेण्ट के तीन सौ फौजी स्वेच्छा से वहां आ पहुँचे थे। लैफ्टिनेण्ट ढिल्लन को उनका सेनापति नियुक्त किया गया। कप्तान सहगल ने सेना से भागने के बारे में कड़ी चेतावनी देते हुए कहा कि ऐसा करने वालों को गोली से उड़ा देने का अधिकार हर फौजी को दे दिया गया है और रात को भाग जाने वाले पांचों अफसरों को गिरफ्तार करने का यत्न किया जा रहा है। सफाई के वकील श्री देसाई द्वारा जिरह करने पर गवाह ने कहा कि युद्ध-बन्दियों के कैम्पों में जो अव्यवस्था थी, वह जापानियों के ही कारण थी। कप्तान शाह नवाजखां ने यह साफ कह दिया था कि फौज में जो लोग भरती होना चाहें, वे सर्वथा स्वेच्छा से ही भरती हों। फौज को दृढ़ निश्चयी, वीर, साहसी और देश की स्वतन्त्रता के लिये सर्वस्व न्यौछावर करने वालों की ही आवश्यकता है। हमारी कम्पनी के अधिकांश लोगों ने युद्धबन्दी रह कर मरने की अपेक्षा अपने देश की मुक्ति के लिए मर जाना श्रेयस्कर मान कर फौज में भरती होना ही पसन्द किया। सुभाष बोस की इस चेतावनी पर कि जो युद्ध-क्षेत्र में आगे न जाना चाहें, पीछे रह जांय,—किसी ने भी पीछे रहना पसन्द न किया।

छठे सरकारी गवाह सन्तोखसिंह १६४२ में जोहोर में जापानियों के हाथों युद्ध-बन्दी बनाये गये थे। १६४२ के सितम्बर

मास में आप आजाद हिन्द फौज में भरती हुये थे। गवाह ने बताया कि वह कप्तान सहगल के कहने पर दूसरी बार खड़ी की गई आजाद हिन्द फौज में भरती हुए थे। उन्होंने साफ ही कहा था कि इसके लिए किसी को भी मजबूर न किया जायगा। सिलेटर कैम्प में भाषण देते हुए कप्तान शाह नवाजखां ने भी देश की आजादी के नाम पर अपील की थी। उन्होंने कहा था कि गुरु गोविन्दसिंह जी का साथ देने वाले भी शुरू में पांच ही साथी थे। हमें भी वैसे ही साहसी और वीर साथी चाहियें।

सातवें गवाह लैंसनायक गंगाराम नेवार ने बताया कि कप्तान शाह नवाजखां ने उसके कैम्प में आकर देश की आजादी के लिए उपस्थित हुए इस अलभ्य अवसर से लाभ उठाने पर जोर दिया।

आठवें गवाह सूबेदार जनरल नूरखां ने बताया कि लैफ्टिनेएट ढिल्लन ने नीसून कैम्प में भाषण देते हुए कहा था कि जापानियों के धर्म के प्रवर्तक भगवान् बुद्ध भारत में ही पैदा हुए थे। इस लिए जापानियों के साथ मिल कर देश को स्वतन्त्र करने में हमें संकोच नहीं करना चाहिये। गुप्तचरों के दल के संगठन का विवरण बताते हुए गवाह ने कहा कि किस प्रकार जापानियों की सहायता से उसको तय्यार किया गया था और फरवरी १९४४ में एक पनडुब्बी में बिठा कर हिन्दुस्तान भेजा गया था। मार्च में यहां आने पर हमने अपने को ब्रिटिश अधिकारियों के हाथों में सौंप दिया।

नौवें गवाह हवलदार सचासिंह ने बताया कि मैं युद्धबंदी

बनाये जाने के कुछ समय बाद ही फौज में भरती हो गया। लैफ्टिनेण्ट ढिल्लन और मेजर धार ने हमारे कैम्प में आकर भाषण देते हुए कहा था कि यह फौज केवल हिन्दुस्तान की आजादी के लिए ही लड़ेगी। यदि कहीं जापानियों ने हिन्दुस्तान में प्रवेश करने पर हमें धोखा दिया, तो हमें उनसे भी लड़ना होगा। फिर ऐसा समय हाथ न लगेगा। मैं नेहरू रेजीमेण्ट में था। हमारे कमाण्डर पहिले तो मेजर महबूब थे, बाद में लैफ्टिनेण्ट ढिल्लन बनाए गए। ईरावदी नदी के किनारे पर बानगू प्रदेश में हम रक्षापंक्ति बना कर डट गये थे। भीषण युद्ध हुआ। मैंने अंग्रेजी सेना को आत्म-समर्पण किया था। जिरह करने पर गवाह ने बताया कि स्वदेश की आजादी की भावना से प्रेरित होकर और उसके लिए अंग्रेजों से लड़ने का निश्चय करके ही मैं आजाद हिन्द फौज में भरती हुआ था।

दसवें गवाह फाकासिंह ने नीसून कैम्प में भी ढिल्लन के भाषण देने की बात कही और बताया कि मैं जानता था कि मुझे आजाद हिंद फौज में भरती होने के बाद हिंद की आजादी के लिए लड़ना है।

ग्यारहवें गवाह जमादार मुहम्मद नवाब, बारहवें गवाह हवलदार मुहम्मद सरवर और तेरहवें गवाह जमादार मुहम्मद हसन ने भी आजाद हिंद फौज के संगठन पर रोशनी डाली। चौदहवें गवाह हवलदार बलित बहादुर ने बताया कि आजाद हिंद फौज के प्रचार के लिये बुलर कैम्प में

नाटक हुआ करते थे और उसी समय भाषण भी होते थे, जिनमें देश की आजादी के नाम पर अपील की जाती थी। पन्द्रहवें गवाह राइफलमैन रविलाल ने आजाद हिंद फौज के गठन का हाल सुनाते हुए बताया कि हम से कहा गया कि जो इसमें भरती न होंगे, उनको शत्रु समझा जायगा और शत्रुओं का-सा उनके साथ व्यवहार किया जायगा। जिरह करने पर गवाह ने कहा कि मलाया में जापानियों के मुकाबिले में पीछे हटने के समय भोजन-व्यवस्था बहुत खराब थी, शस्त्रास्त्र भी न थे, टैंकों की सहायता न थी और हवाई जहाज भी कुल चालीस ही थे। मुझ से अक्टूबर-नवम्बर १६४५ में तीनों अभियुक्तों के सम्बंध म बयान लिये गये थे। सोलहवें गवाह रामस्वरूप ने कहा कि सिंगापुर का पतन होने से एक दिन पहिले मैं देसी भेस में सेना में से निकल भागा था। कप्तान मल्लिक के कहने पर मैं आजाद हिन्द फौज भरती हुआ था और गुप्तचरी के काम पर हिन्दुस्तान भेजा गया था। मैं स्वेच्छा से ही भरती हुआ था और उसके उद्देश्य में मेरा दृढ़ विश्वास था। सत्रहवें गवाह लैंसनायक महेन्द्रसिंह ने बताया कि बिदादरी कैम्प के बाद सिलेटर कैम्प में भेजे जाने पर मैं स्वेच्छा से आजाद हिंद फौज में भरती हुआ था। जिरह करने पर उसने कहा कि इस फौज का उद्देश्य हिंद की आजादी था और मेरा उसमें विश्वास था। अठारहवें गवाह सिपाही दिलासासिंह ने बताया कि मैं पहिले आजाद ब्रिगेड नं० ४ बटालियन में था। फिर मुझे बोस ब्रिगेड

संभावना की जा रही थी, जिसमें एक गढ़वाली कंपनी लेने वाली थी। हम अधिक से अधिक खाद्य सामग्री एकत्र करने में लगे हुए थे। १५ मई १६४४ को शाह नवाज खां के कहने पर मैं फोन पर जब समाचार लेने गया, तब मेजर महबूब ने कहा था कि थोड़े से ही प्रतिनिधि से शत्रु पर अधिकार कर लिया गया है। अफसरों और फौजियों में वैसा ही साहस और उत्साह बना हुआ है। हमारी कुछ भी क्षति नहीं हुई। शत्रु का बहुत-सा सामान हमारे हाथ लगा है। जिरह करने पर गवाह ने आजाद हिन्द सरकार की स्थापना और फौज के सङ्गठन का विशद वर्णन करते हुए कहा कि हमें हिन्दुस्तानी अफसरों द्वारा ही शिक्षा दी गई थी और फौज में एक भी अफसर जापानी न था। ढाका मोर्चे पर कूच करने के समय सुभाष बाबू ने अपने भाषण में कहा था कि "आजाद हिन्द फौज का संगठन जापानियों के लाभ के लिये न करके हिन्द की आजादी के लिये किया गया है। अपनी कमियों के कारण हम जापानियों की सहायता ले रहे हैं। हमारे लिये सुख नहीं; कष्ट ही कष्ट है। हमें देशभक्त फौजी चाहियें। जो आगे नहीं बढ़ सकते उनको पीछे हट जाना चाहिए। किसी ने भी पीछे रहना मंजूर न किया। ढाका पलाम हिन्दुस्तान की सीमा का प्रदेश है। पलाम हिन्दुस्तान की सीमा से सिर्फ १५ मील दूरी पर है। खाने का सामान न रहने पर हम जङ्गल की घास पर पत्तियों पर गुजारा करते थे।

बीसवें गवाह हनुमानप्रसाद ने कहा कि मैं नेहरु रेजीमेण्ट की सातवीं बटालियन में नर्सिङ्ग अर्दली था। हम दिन में आराम करते और रात को खाइयां खोदते थे। मैं ब्रिगेड के अस्पताल में काम करता था।

इक्कीसवें गवाह मुनेरभालसिंह ने कहा कि मैंने पोपा क्षेत्र की लड़ाई में भाग लिया था। हमारी टुकड़ी का काम शत्रु की मोर्चेबन्दी की जानकारी प्राप्त करना था। बाइसवें गवाह सिपाही सादुल्लाखां ने जिरह करने पर स्वीकार किया कि मैं कुछ भी पढ़ा लिखा नहीं हूँ। मैं कोई डायरी आदि न रखता था। मैंने जो भी तिथियां आदि बताई हैं, वे सारी मुझे पहिले ही से बताई गई थीं। मुझे अपना बयान भी पहले से बता दिया था। तेईसवें गवाह लाँसनायक मुहम्मद सैयद ने बताया कि मैं आज़ाद हिन्द फौज में सेकण्ड लैफ्टिनेंण्ट था। कप्तान सहगल के व्याख्यान की चर्चा करने के बाद गवाह ने कहा कि जब हमारी रैजीमेण्ट मोर्चे के लिये कूच करने को थी, तब नेताजी ने कहा था कि हम हिन्द की आजादी के लिये लड़ते हुए जो कष्ट झेल रहे हैं, उनका अन्त निकट ही है। जो कष्ट न झेल सकें, उनको मोर्चे पर नहीं जाना चाहिये। वे पीछे रंगून लौट सकते हैं। भिंगताउन में कप्तान सहगल का भाषण हुआ था। उन्होंने युद्ध के मोर्चे की सारी स्थिति हमको समझाई। जिरह करने पर गवाह ने कहा कि कप्तान सहगल ने कहा था कि जो मोर्चे पर न जाना चाहें अथवा अंग्रेज सेना में मिल

जाना चाहें, वे अभी से सूचित कर दें। उनके लिये समुचित व्यवस्था कर दी जायगी। लेकिन, कोई भी सामने न आया। नेताजी ने हमसे कहा था कि हम चालीस करोड़ क्षुधापीड़ित और नग्न भारतीयों के प्रतिनिधि हैं। हमें थोड़े भोजन और वेतन से काम चला लेना चाहिये। अपने देश के प्रति हमें अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिये। मुझ पर इस उपदेश का बहुत गहरा असर पड़ा था। चौबीसवें गवाह गुलाम मुहम्मद ने बताया कि मैं फौज में भारी शस्त्रास्त्रों की शिक्षा देने पर नियुक्त किया गया था। मिंगलाडन में कप्तान सहगल ने अपने भाषण में कहा था कि मुझे तुम्हारी फौज का सेनापति होने में गर्व है। हमें नियन्त्रण और अनुशासन का मापदण्ड ऊंचा उठाना है। नेता जी के भाषण का उल्लेख करते हुए गवाह ने कहा कि उन्होंने कहा था कि हमारी स्वतन्त्रता का भाग्यनिर्णय इम्फाल की पहाड़ियों और अराकान के मैदानों में होगा। गतवर्ष की तरह इस वर्ष एक भी सैनिक को शत्रु से मिल जाने का कलंकित काम नहीं करना चाहिए। जो आगे न बढ़ना चाहे, वह पीछे हट सकता है। तुम को भूख, प्यास, तंगी और तकलीफ का सामना करना है। मृत्यु का भी सामना करना है। अब तक हमारा नारा था—"चलो दिल्ली।" अब हमारा नारा होगा—"खून, खून, खून।" इसका मतलब यह है कि हमने चालीस करोड़ के लिए अपना खून बहाने का निश्चय कर लिया है। शत्रु के खून की भी हम नदी बहा देंगे। नागरिकों का नारा यह होगा—"करो सब निछावर,

बनो सब फकीर।" अन्त में नेताजी ने स्वयं ये नारे लगाये थे— "इन्कलाब जिन्दाबाद" "चलो दिल्ली" और "खून, खून, खून।" २३०० सैनिकों के एक स्वर के इन नारों से आकाश गूँज उठा। क्योक पडांग से हमें पोपा भेजा गया था। नं० २ पैदल सेना को पोपा पहाड़ी की रक्षा का भार सौंपा गया था। मोर्चे पर कर्नल शाहनवाज खां ने हमारा हौसला बढ़ाने के लिए एक भाषण दिया और कहा कि हिन्द के नाम को कलङ्कित नहीं करना। टुगोन क्षेत्र में हमने दुश्मन को मार भगाया। इसी अवसर पर तीन सैनिक भागने के अभियोग में पकड़े गये थे, जिनमें एक मुहम्मद हुसैन था। येनयिन क्षेत्र में भी हमने दुश्मन को मार भगाया था। लेकिन, शत्रु के हवाई हमले का सामना हम न कर सके। पैदल सेना ने भी हमें घेर लिया था। अन्त में कर्नल सहगल ने मेगिनगांग के तीन ओर पहाड़ियों और एक ओर नदी से घिरे हुए रास्ते से निकलने का आदेश दिया। लेकिन, रास्ता न मिलने से शत्रु से लड़ कर मर मिटने या वेश बदल कर छिपे रहने की अपेक्षा हमने युद्धबंदी बनना स्वीकार किया। कर्नल सहगल ने आत्मसमर्पण के लिए एक सन्देश भेजा और अंग्रेज अफसरों के सामने हमने आत्मसमर्पण कर दिया। जिरह करने पर गवाह ने कहा कि कर्नल सहगल ने उस सन्देश में यह लिखा था कि यदि हमें युद्धबन्दी बनाना स्वीकार न किया गया, तो हम अन्त तक लड़ेंगे। नीसून कैंप में दिये गये कर्नल शाहनवाज खां के भाषण का उल्लेख करते हुए गवाह ने कहा कि उन्होंने कहा था कि हजरत इमाम हुसैन की तरह मैंने हिन्द

की आजादी के लिए लड़ने का निश्चय कर लिया है। जो कोई भी हमारे देश को बुरी नजर से देखेगा, उसको अन्धा कर दिया जायगा। पोपा में दिये गये भाषण का भी गवाह ने उल्लेख किया। कुछ सैनिकों के शत्रु के साथ मिल जाने की निन्दा करते हुए शाह नवाजखां ने कहा कि हम पर सारे संसार की आँखें लगी हुई हैं। यदि हम इस समय भी आजाद न हुए, तो एक हजार वर्षों तक भी आजाद न हो सकेंगे। पच्चीसवें गवाह अल्लादित्ता ने बताया कि उसको हांगकांग में जापानियों ने बन्दी बनाया था। आजाद हिन्द फौज से भागने वाले मुहम्मद हुसैन को मृत्यु-दण्ड की सजा कप्तान शाह नवाजखां ने दी थी। छब्बीसवें गवाह ने कहा कि मैं बिदादरी कैम्प के अस्पताल में नर्सिंग सिपाही था। मुझे पोपा भी भेजा गया था। मैं अल्लादित्ता और मुहम्मद हुसैन दोनों को जानता हूँ। खजिन शाह ने मुहम्मद हुसैन को गोली मारने के लिए मुझे कहा था। अयासिंह ने मुझे राइफल दी थी। मैंने तीन गोलियाँ दागी थीं। सत्ताइसवें गवाह सरदार मोहम्मद ने जिरह में कहा कि मुझे निश्चय नहीं कि गुलाम मुहम्मद मर गया था या नहीं? गोलियों की आवाज से मैंने उसके मरने की कल्पना कर ली थी। मैंने उसके बदन पर खून के चिन्ह नहीं देखे। अठाइसवें गवाह अब्दुल हफीजखाँ ने अपने बयान में कहा कि मैं नीसून कैम्प के अस्पताल में था। मुझे वहाँ से नेहरु रेजीमेण्ट की सातवीं बटालियन में भेजा गया था। मैंने लैफ्टिनेण्ट विल्सन के आदेश पर चार सैनिकों को गोली से मारे जाते हुए देखा था। उन पर शत्रु से मिल जाने का

आरोप था। गिरफ्तार किये जाने पर उनको मृत्युदण्ड की सजा दी गयी थी। उन्तीसवें गवाह ज्ञानसिंह ने बताया कि चार सैनिकों को जब लैफ्टिनेण्ट ढिल्लन के आदेश पर गोली से उड़ाया गया था, तब मैं वहाँ पर उपस्थित था।

६ दिसम्बर को अन्तिम और तीसरे सरकारी गवाह लैफ्टिनैन्ट कर्नल जे० ए० किंग्सन ने बताया कि मैं १६४५ में बर्मा में गुरखा पलटन का कमाण्डर था। अप्रैल १६४५ में हम इरावदी के बायें किनारे होते हुये आगे बढ़ रहे थे। मैं मोयांग गाँव से ६०० गज उत्तर में रुक गया। मुझे पता लग गया था कि गाँव में शत्रु सेना आ पहुँची है। एक टुकड़ी गाँव के दक्खिन में भेजी गई। गाँव के पूर्व की ओर मुझे अपनी टुकड़ी के नायक के साथ कप्तान सहगल मिला। साथ में उनकी फौज के अनेक अफसर और सिपाही भी थे। मुझे उनकी ओर से लिखा गया पत्र भी दिया गया। उसमें लिखा था कि ५० अफसर और ५०० सैनिक युद्धबन्दी बनाये जाने की शर्त पर आत्मसमर्पण कर रहे हैं। मैंने सहगल से परिचय प्राप्त किया और उनके भोजन का प्रबन्ध किया। कप्तान सहगल ने मुझे बताया कि मैं एक ऊँचे और सच्चे ध्येय से लड़ा हूँ। पराजित हो जाने पर उसका परिणाम भोगने के लिये भी तत्पर हूँ।

गंगासरण ने जिरह करने पर बताया कि मुझे मोर्चे पर से भागने के कारण मृत्युदण्ड की सजा दी गई थी, किन्तु कप्तान सहगल ने मेरा यह दण्ड माफ कर दिया था।

शुरू कर दिया। आत्म-समर्पण करने के हुक्म तक मैं अपने स्थान पर डटा रहा। दुश्मन से लड़े बिना ही आत्म-समर्पण करने के हुक्म पर मुझे बहुत क्रोध आया। मुझे यह सैनिक स्वाभिमान के सर्वथा विपरीत प्रतीत हुआ।

१५-१६ फरवरी की रात को हमें पता दिया गया कि हिन्दुस्तानी अफसर और फौजियों को फरार पार्क में और अँग्रेजों को चांगी में इकट्ठा किया जा रहा है। अफसरों में किये गये इस भेदभाव पर हमें बड़ा अचरज हुआ। १६ फरवरी की सवेरे हमारे कमान-अफसर मेजर येड्डम मुझ से अलविदा लेने आया। मैं समझ गया कि हमें यन्त्रणायें और यातनायें भोगने के लिए जापानियों के हाथों में छोड़ा जा रहा है।

ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि कर्नल हण्ट ने हमें फरार पार्क में आ कर जापानियों के हाथों में यह कहते हुए दे दिया कि "अब तुमको जापानियों का हुक्म वैसे ही मानना होगा, जैसे हमारा मानते थे।" उसके बाद मेजर फूजीवारा ने कहना शुरू किया कि "जापानी सरकार की ओर से तुम अब मेरे कब्जे में हो और मैं तुम को जी० ओ० सी० कप्तान मोहनसिंह के हाथों में देता हूं।" उसने यह भी कहा कि तुम लोगों के साथ युद्ध-बन्दियों का-सा नहीं, भाइयों का-सा व्यवहार किया जायगा। तुम सब, आशा है, उस सेना में भरती हो जाओगे, जो कप्तान मोहनसिंह के नेतृत्व में भारत की आजादी के लिए लड़ने को खड़ी की जायेगी। कप्तान मोहनसिंह ने भी इसी आशय का भाषण दिया।

मैं यह सुन कर अवाक् रह गया। मैंने सोचा कि क्या हमें
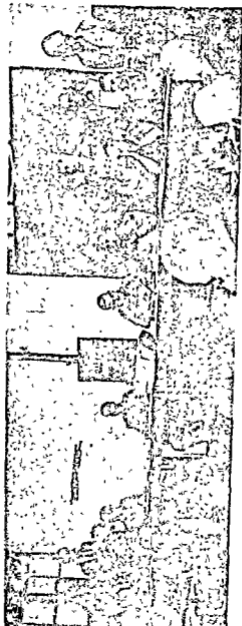
फौजी अदालत के सारे जज अपने स्थानों पर बैठे हुये मुकदमे की सुनवाई कर रहे हैं।

अब अपने ही भाइयों के साथ लड़ना होगा? पशुओं की तरह हमें जापानियों के हाथों में दे दिया गया था। मैं बड़े असमंजस में पड़ गया। मुझे पूरा निश्चय था कि मोहनसिंह कूट-नीति में जापानियों का मुकाबिला न कर सकेगा और वे हमारा उपयोग अपने लिए करेंगे। मेरी राजभक्ति की भावना भी अभी मुर्भाई न थी। मैंने स्वयं आजाद हिन्द फौज से अलग रहकर दूसरों को भी अलग रहने की सलाह दी। मेरी सलाह यह थी कि जो हमें अपने भाइयों पर गोली चलाने को कहेगा, हम उसी को गोली

उपयोग न करने दिया जाय और वैसा होने पर उसको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जाय। सबको इसमें शामिल होने की आजादी दे दी गई। जोर-जबरदस्ती करने वालों को, मैंने कहा कि, सख्त सजा दी जायेगी। मुसलमान अफसरों की एक सभा मसजिद में की गई।

बैंगकौक सम्मेलन के लिये प्रतिनिधि चुनने के प्रश्न पर कप्तान मोहनसिंह से मतभेद होने से मुझे नीसून कैम्प से कुआलालम्पुर कैम्प में भेज दिया गया। जून में वहां पहुंचने पर मुझे मलाया के समस्त कैदियों का कमाण्डर बना दिया गया। मेरा काम सब जगह जाना और उनकी शिकायतें जापानी सदर मुकाम में पहुँचाना था। जापानी कमाण्डर का यहां भी यही भाषण होता था कि हम सब एशिया के लोग आपस में भाई-भाई हैं। भारत की आजादी के लिये शीघ्र ही लड़ी जाने वाली लड़ाई के हम आपको सैनिक बनाना चाहते हैं। जापानियों की सद्भावना पर मुझे सन्देह था। इसलिये मैंने जापानी कमाण्डर से साफ साफ कह दिया कि किसी को भी सेना में जबरन भरती न किया जायगा। सेरेम्बान में विकट स्थिति पैदा हो गई। वहां फौज में भरती होने से इनकार करने पर बन्दियों के कैम्प के चारों ओर मशीनगनें लगा दी गई थीं, कैम्प के कमाण्डर लैफ्टिनेण्ट गुलाम मुहम्मद को तनहाई में दे दिया गया था और उनको चौबीस घण्टे का नोटिस गोली चलाने के लिए दे दिया गया था। मैंने वहां जाकर मुश्किल से स्थिति को संभाला। सारे मलाया का दौरा कर जापानियों को

जोर-जबरदस्ती करने से रोका। क्वालालम्पूर में तो मैंने हिन्दुस्तानियों को जापानी कवायद आदि सिखाने से भी बन्द कर दिया, हालांकि रंगून में अंग्रेज कैदियों ने यह सब सीखना शुरू कर दिया था। मैंने हिन्दुस्तानी कैदियों के लिये भोजन आदि की भी सर्वोत्तम व्यवस्था करवा दी थी। काम साधारण लिया जाता था और वेतन नियम से दिया जाता था। आमोद-प्रमोद, खेल-कूद और सिनेमा देखने की भी सहूलियत कर दी गई थी। मसजिदों और मन्दिरों में जाकर प्रार्थना करने की भी सहूलियत दे दी गई थी।

एक बार मेरे बाहर होने पर २३ नान-कमीशन अफसरों को कैद में लेकर उनके कट्टर अंग्रेज-पक्षपाती होने से कुछ को गोली से उड़ाने का भी निश्चय कर लिया गया था। मैंने लौटने पर इसका विरोध किया और कमाण्डर होने के नाते से मैंने कहा कि जापानियों को सीधी कार्यवाही नहीं करनी चाहिये। मैंने इस्तीफा देने की भी धमकी दी। उनमें से पन्द्रह को तो लौटाने को वे तय्यार हो गये। बाकी को उन्होंने गोली से उड़ा देने का निश्चय किया हुआ था। उनका अपराध यही था कि वे अपनी राजभक्ति की शपथ पर आमादा थे। मैंने जांच के लिये अदालत बिठाने की मांग की। इसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। उस अदालत से वे सब निर्दोष छोड़ दिये गये। इस प्रकार मैंने कभी भी जापानियों की इच्छा के सामने सिर नहीं झुकाया और उनको अपनी मनमानी नहीं करने दी। अपने देश की प्रतिष्ठा पर मैंने कभी भी आंच नहीं आने दी। उनके जातिगत

पक्षपात का सदैव विरोध किया। किसी को कभी गिरफ्तार नहीं करने दिया। सप्ताह में एक दिन युद्धबन्दी उपवास करके निराश्रितों की सहायता किया करते थे। २० बोरा चावल जापानी कमाण्डर से लेकर हर मास ऐसे लोगों में बांटा जाता था।

सितम्बर १६४२ में मैं सिंगापुर आ गया। यहां आकर पहिला काम मैंने बंदी कैम्पों के निरीक्षण करने का किया। उनके सुख-सुभीते का मैं पूरा ध्यान रखता था। कई बीमारों को अपने पास रखकर अच्छा किया।

जापानियों के गड़बड़ करने पर मैंने आजाद हिन्द फौज को भंग करने के लिये कप्तान मोहनसिंह को तय्यार कर लिया।

यह जान कर कि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस सिंगापुर आकर आजाद हिन्द फौज की कमान अपने हाथों में लेंगे, मैं दूसरी आजाद हिन्द फौज में शामिल हो गया। उस समय यह स्पष्ट था कि जापानी हिन्दुस्तान पर जरूर हमला करेंगे। ब्रिटिश सेनायें उनको रोकने में असमर्थ थीं। इसलिये हिन्दुस्तान में लड़ाई की आग का फैलना निश्चित था। मलाया में जापानियों की लूट और अनाचार को मैंने अपनी आंखों से देखा था। वह सब मैं हिन्दुस्तान में होने नहीं देना चाहता था। मलाया में असहाय कैदी बने रहने की अपेक्षा हाथ में रायफल लेकर अपने देशवासियों के जीवन, सम्पत्ति और सम्मान की रक्षा करना हमें अधिक उपयोगी प्रतीत हुआ। जापानियों के विश्वासघात करने पर उनका सामना करने वाले हिन्दुस्तानियों को मैंने बटोरना शुरू किया।

नेताजी के सिंगापुर आने पर मैंने उनको बहुत निकट से देखना शुरू किया। मैं उनसे पहिले कभी मिला न था और न मैं उनके बारे में कुछ अधिक जानता ही था। मैंने उनके अनेक भाषण सुने। मुझ पर जादू का-सा असर हुआ। उनके व्यक्तित्व ने मुझे मोह लिया। अपने देश का सही चित्र उन्होंने हमारे सामने पेश किया। मैंने पहिली बार हिन्दुस्तान को हिन्दुस्तानी की नजरों से देखा। उनके निःस्वार्थ जीवन, देश के प्रति उनकी एकान्त निष्ठा, उनकी स्पष्टवादिता और जापानियों के सामने झुकने से इनकार करने की उनकी दृढ़ता का मुझ पर बहुत गहरा असर पड़ा। मैंने अनुभव किया कि उनके हाथों में देश की प्रतिष्ठा सर्वथा सुरक्षित है। संसार की किसी भी चीज के साथ उसका सौदा करना उनके लिये संभव ही नहीं है। उन्होंने कमजोर और सर्वस्व त्याग के लिये अनिच्छुक लोगों को आजाद हिन्द फौज से अलग हो जाने को कहा उसमें रहने वालों से उन्होंने कहा कि उनको भूख, प्यास, थकान और मृत्यु तक का सामना करने को तय्यार रहना चाहिये। मैंने उन हजारों गरीबों को देखा, जिन्होंने अपना सर्वस्व उनके चरणों में रख दिया। उनका सारा का सारा परिवार आजाद हिन्द फौज में भरती होकर स्वदेश के लिये फकीर बन गया। मुझे पता चला कि हमें असली नेता मिल गया। जब उसने करोड़ों नंगे-भूखे, निःशस्त्र और असहाय हिन्दुस्तानियों के नाम से अपील की और उनकी आजादी के लिये अपने

सहायक होने की अपेक्षा बाधक ही सिद्ध हुए। कभी कभी तो मुझे उन पर गोली तक चलानी पड़ी। यह मेरी डायरी में भी दर्ज है। गिरफ्तार किए गए अंग्रेजों के साथ हमने बहुत अच्छा व्यवहार किया था और मैं अपने सैनिकों के लिए उनसे वैसे ही अच्छे व्यवहार की उम्मीद रखता था। कोई भी वेतनभोगी या जापान के हाथ का खिलौना बनी हुई फौज इतनी मुसीबतें न झेल सकती थी। हमने आजाद हिन्द सरकार की नियमित सेना के रूपमें अपनी मातृभूमि की आजादी के लिए सभ्यतापूर्ण कानून के अनुसार युद्ध किया था। इसलिए मैंनें कोई ऐसा अपराध नहीं किया, जिसके लिए किसी फौजी या अन्य किसी अदालत में मुझ पर मुकदमा चलाया जाय।

हत्या में सहायक होने के अभियोग में भी मैं निर्दोष हूं। एक नाजुक समय में मुहम्मद हुसैन ने विश्वासघात करने का यत्न किया और उसने दूसरों को भी उसके लिए उत्तेजित किया। यह सफल हो जाता, तो सारा भेद दुश्मन के हाथों में पड़ कर हमारा सर्वनाश हो जाता। आजाद हिन्द फौज के ही नहीं, किंतु सभी सभ्य देशों के फौजी कानून के अनुसार यह असाधारण अपराध है और इसकी सजा है मृत्यु। यह गलत है कि मैंने यह सजा दी थी और मुझ द्वारा दी गई सजा के लिए उसको गोली मारी गई थी।

२. कप्तान प्रेमकुमार सहगल

कप्तान सहगल ने अपने बयान में कहा कि मैं सर्वथा

निर्दोष हूं और यह मुकदमा गैरकानूनी है। ११ नवम्बर १६४० को अपनी बटालियन के साथ कम्पनी कमाण्डर की हैसियत से मैं सिंगापुर आया और हमें कोटाभारु की सुरक्षा के लिये बनाये जाने वाले मोर्चे पर भेज दिया गया। जापानियों के साथ हुई कई मुठभेड़ों में हमने नाम पैदा किया। यद्यपि हम लड़ाई में पीछे हट रहे थे, फिर भी कई बार हम आक्रमण भी कर बैठते थे। एक बार तो हमने पांच सौ जापानियों का सफाया करके बहुत-सा गोला-बारूद छीना था। ३०-३१ जनवरी १६४२ की रात को सिंगापुर आकर हमने उसकी सुरक्षा की कमान संभाल ली। ८ फरवरी को जापानी सिंगापुर पर उतर आये। १० फरवरी को हमारी उनसे मुठभेड़ हुई। हमने उनको समुद्र और जंगलों में खदेड़ दिया। हम आस्ट्रेलियन सेना का स्थान लेने जा ही रहे थे कि पहाड़ी पर जापानियों ने हमला बोल दिया। आस्ट्रेलियन भाग खड़े हुए और हमारी सड़क को दोनों ओर से जापानियों ने घेर लिया। हमको भारी नुकसान झेलना पड़ा। बाकी बटालियन के सदर मुकाम से अलग हो जाने पर भी मैंने कम्पनी के लोगों को इकट्ठा किया और लड़ाई जारी रख कर हम बटालियन से दुपहर को आ मिले। शत्रु के सारे आक्रमण विफल बना देने पर भी हमें १२-१३ फरवरी को बिदादरी लाया गया और यहां हमसे आत्मसमर्पण करा दिया गया।

मलाया में हमारी सेनाओं के पीछे हटने पर लोग प्रायः हमसे पूछा करते थे कि क्या हमें दुश्मन की दया पर छोड़ रहे हो? हमारा

क्या होगा ? वे हमें लूटेंगे, हमारी स्त्रियों को बेइज्जत करेंगे और हमें मार डालेंगे। मैं अपने को असहाय देखकर लज्जित होता था।

भेड़-बकरियों की तरह जापानियों के हाथों में सौंप जाने की फरार पार्क की घटना से हम सब पर गहरी चोट लगी। हमारी बहादुरी का यह बदला था। हमने समझा कि ब्रिटिश सरकार ने वे सब बन्धन स्वयं ही काट दिये और उनकी जिम्मेवारी से भी मुक्त कर दिया, जिनसे उसने हमें अपने साथ बांधा था। इस स्थिति में हमसे राजभक्ति की आशा क्या की जा सकती थी ? कप्तान मोहनसिंह के आजाद हिन्द फौज के संगठन के लिये किये जाने वाले प्रयोगों में साथ देने पर भी लोगों को जापानियों के बारे में काफी सन्देह और आशंका थी। देश को शीघ्र से शीघ्र स्वतन्त्र देखने की इच्छा होते हुए भी मैंने उसमें शामिल होने से इनकार कर दिया। मेरे सरीखे दस हजार युद्धबंदियों को तेंगाव हवाई अड्डे के कैम्प में भेज दिया गया। भोजन, रहन-सहन और दवा-दारू की व्यवस्था यहाँ साधारणतया अच्छी ही थी। १६४२ के जून मास में बंगकौक में हुई कान्फ्रेंस में मुझे भी बुलाया गया था। पर, मैं वहाँ न गया। जून और अगस्त के बीच में हुई महत्वपूर्ण घटनाओं ने मेरा विचार बदल गया। सबसे मुख्य जापानियों का वेग से आगे बढ़ते जाना था और हिन्दुस्तान पर हमला किया ही जाने वाला था। लन्दन के रेडियो से प्राप्त होने वाले समाचार भी भय पैदा करने वाले थे। हिन्दुस्तान से नयी भरती के सिपाही जो भेजे गये थे, उनसे साफ पता चलता था कि किस प्रकार के आदमी हिन्दुस्तान की

रक्षा के लिए बाकी बचे हैं। सिंगापुर के आत्म-समर्पण से कुछ ही समय पहिले आये हुए अफसरों से भी हमें पता चला था कि हिन्दुस्तान में सेना के पास नयी युद्ध-सामग्री बिलकुल भी नहीं है। सिपाहियों को लकड़ी की बन्दूकों और हलकी मशीनगनों से ही सैनिक शिक्षा दी जाती है और हिन्दुस्तान की सुरक्षा की व्यवस्था प्रायः 'नहीं' के बराबर है। हम में से हर एक यह अनुभव कर रहा था कि जापानियों के आक्रमण को हिन्दुस्तान में कोई भी रोक न सकेगा। यह विचारते ही हम कांप उठते थे। दूसरी बात बम्बई में काँग्रेस का "अंग्रेजो ! भारत छोड़ो" का प्रस्ताव पास करना और उसके बाद हुई घटनायें थीं। लन्दन और दिल्ली के रेडियो के इस बारे में चुप रहने पर भी हिन्दुस्तान में जमीन के भीतर काम करने वाले गुप्त रेडियो और जापानी तथा अन्य धुरी राष्ट्रों के रेडियो उन समाचारों और सरकार की ज्यादतियों की खबरें सब ओर फैलाते ही थे। उनसे १८५७ की क्रान्ति के बाद की-सी भयाक्रान्त स्थिति का पता चलता था। इनकी सचाई में सन्देह करने का कोई कारण न था। अपने घर वालों के बारे में भी गहरी चिन्ता ने हमें घेर लिया था। जिस ब्रिटिश साम्राज्य ने हमारे देश को ऐसी गुलामी में जकड़ रखा था, उस पर हमें रह रह कर रोष आता था। इस पर हम चिन्ता, विचार और चर्चा करते हुए सोचा करते थे कि हमें क्या करना चाहिए? विदेशी आक्रमण के परिणाम की कल्पना करना हमारे लिए कठिन न था। देश के नेताओं के स्वदेश की रक्षा को अपने हाथ में लेने के प्रस्ताव को घृणा के साथ ठुकरा दिया गया था। सरकार

की जो तय्यारी थी, उसको जानते हुए हम में से बड़े से बड़ा आशावादी भी यह मानने को तय्यार न था कि जापान के हमले को विफल बनाया जा सकेगा। जनता से तो आशा ही क्या की जा सकती थी। वह अतिशय भीषण यातनाओं का सामना करने को लाचार हो जाती। अंग्रेज सरकार द्वारा 'घर-फूंक नीति' के अपनाये जाने पर तो मुसीबत और भी बढ़ जाती। इस सबका सिर्फ एक यही हल हमारे पास था कि सुदृढ़, सुसंगठित और सुशिक्षित सेना तय्यार की जाती। वह वर्तमान विदेशी हकूमत से हिन्दुस्तान को छुटकारा दिलाने के साथ साथ जापानियों की ज्यादतियों से उनकी रक्षा करती और अंग्रेजों के स्थान में उन द्वारा अपनी हकूमत कायम किए जाने का विरोध करती। आजाद हिन्द सेना के संगठन का यही लक्ष्य था। इसलिए हमने सोचा कि क्यों न उसमें शामिल हुआ जाय ? मलाया में हिन्दुस्तानियों के जान-माल और इज्जत की उसने जो रक्षा की थी, वह उसमें शामिल होने का एक बड़ा कारण था। अत्यन्त विकट मानसिक स्थिति में मैंने बहुत से दिन बिताये। एक ओर तो अंग्रेजों के प्रति मेरी वफादारी का सवाल था और दूसरी ओर मातृभूमि की पुकार थी। मैंने अन्त में आजाद हिन्द फौज में शामिल होकर उसको ऐसी सुदृढ़, शस्त्रास्त्र से सुसज्जित और सुनियन्त्रित फौज बनाने का निश्चय किया, जो अपने को हिन्दुस्तान के लिए न्यौछावर कर दे। मैं किसी भय या लालच से उसमें शामिल न हुआ था। सितम्बर १९४२ में आजाद हिन्द फौज के

कप्तान होने का मुझे केवल ८० डालर वेतन हर मास मिलता था और उससे अलग रहने पर १२० डालर मिल रहा होता।

विशुद्ध देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर ही मैंने आजाद हिन्द फौज का साथ दिया था। स्वदेश की आजादी के लिये मैं अपना खून बहाने को तय्यार था। बर्मा, मलाया और हिन्दुस्तान में भी अपनी माता-बहिनों की इज्जत और निहत्थे लोगों के जान-माल की रक्षा करने के लिए भी मैंने उसका साथ दिया था। एक पवित्र उद्देश्य के लिए मैं उसमें शामिल हुआ था और मैंने कभी भी किसी पर उसमें शामिल होने के लिए जोर-जबरदस्ती नहीं की। किसी ने भी कभी ऐसा नहीं किया था। भरती सर्वथा स्वेच्छा से होती थीं। इस बारे में दी गई गवाही सब झूठी है। किसी भी प्रकार की ज्यादती में मेरा हाथ नहीं रहा और न मुझे उनका पता ही है। मैं शुरू से ही निःस्वार्थ श्रद्धा पर विश्वास रखता था और मैं ऐसे ही लोगों को चाहता था, जो स्वेच्छा से भारत माता के लिए खून बहाने को तैयार थे। इसीसे मोर्चे पर कूच करने के समय मैंने अपने अफसरों और आदमियों को सब कुछ समझा कर अनिच्छुक लोगों को अलग हो जाने की भी सलाह दी थी। मानसिक और शारीरिक दृष्टि से अपने को असमर्थ समझने वाले अलग हो भी गये थे। न तो उनके साथ जोर-जबरदस्ती की गई, न घृणा का व्यवहार उनके साथ किया गया और न उनको किसी प्रकार की सजा दी गई। उनको रंगून में री-इन्फोर्समेण्ट कैम्प में पीछे छोड़ दिया गया था। मोर्चे पर पहुँचने पर मैंने ऐसा...

ही अवसर एक बार फिर दिया। यहां भी कुछ को रंगून लौटने का मौका दे दिया गया था। पोपा में पहुंचने पर तो मैंने लोगों से यहाँ तक कहा था कि जो अंग्रेजों की ओर जाना चाहें, वे अपने शस्त्र देकर उनकी ओर जा सकते हैं। मैं तो एक दिल और एक दिमाग के साथी चाहता था।

मेरे अन्तरंग मित्रों में कई अंग्रेज स्त्री-पुरुष हैं। अंग्रेजों के साथ हमारी दुश्मनी नहीं है। गिरफ्तार किए हुए अंग्रेजों के साथ भी मैंने दोस्तों का-सा व्यवहार करने की सख्त ताईद की थी।

नवम्बर १६४४ के अन्त तक मैं सदर मुकाम में मिलिटरी सेक्रेटरी रहा। कुछ समय तक मैंने असिस्टेण्ट चीफ आफ स्टाफ का भी काम किया। दिसम्बर में मेरे हाथ में पोपा में लड़ने वाली रेजीमेण्ट की कमान दी गई थी। मैंने इस लड़ाई में आजाद हिन्द की स्वतन्त्र सरकार की नियमित रूप से सुसंगठित उस सेना के सिपाही की हैसियत से भाग लिया था, जिसने लड़ाई के सभ्यतापूर्ण कानूनों के अनुसार विदेशी सत्ता के हाथों से मेरी मातृभूमि को आजाद करने को युद्ध ठाना था। ऐसा करते हुए मेरा दावा है कि मैंने कोई अपराध नहीं किया। मेरा दावा है कि मैंने अपनी योग्यता के अनुसार अपने देश की अधिक से अधिक सेवा की है। मेरा यह भी दावा है कि मुझे युद्धबन्दियों की सारी अधिकारपूर्ण सहूलतें मिलनी चाहियें। पोपा पहाड़ी पर २८ अप्रैल १६४४ को आत्मसमर्पण करने से पहिले मैंने अंग्रेज सेनाके कमाण्डर को यह नोट लिखकर भेजा था कि हम केवल युद्ध-बन्दी के रूप में ही आत्मसमर्पण कर रहे हैं।

हमने अपनी शर्त के अनुसार ही आत्मसमर्पण किया था और उसके बाद हमारे साथ युद्ध-बन्दियों का-सा व्यवहार किया भी गया था। यदि हमारी शर्तें स्वीकार न की गई होती, तो हम बराबर लड़ते रहते और हमारी संख्या छः सौ होने से हम उस समय लड़ाई जारी रख सकते थे। हमारे पास शस्त्रास्त्र की भी कमी न थी और देह में खून की अन्तिम बूँद रहने तक हमने भारत माता की आजादी के लिये लड़ने का दृढ़ संकल्प किया हुआ था।

१२ फरवरी से १० मार्च १९४५ तक मैंने कर्नल शाह नवाजखां के स्थान पर डिविजनल कमाण्डर का भी काम किया। मुझे इस हैसियत से ६ मार्च को चार सिपाहियों के मामले की सुनवाई करनी पड़ी। उन पर कर्नल ढिल्लन ने शत्रु से मिलने और सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश करने का आरोप आजाद हिन्द फौजके कानून के अनुसार लगाया गया था। दोषी प्रमाणित होने पर उनको मृत्युदण्ड दिया गया। दुःख प्रगट करने पर उनकी और दूसरों की भी ऐसी सजायें माफ कर दी गई थीं। इतना भी दूसरों को सावधान करने के लिये ही किया गया था। सजा दे भी दी गई होती, तो भी मुझ पर उसमें सहायक होने का आरोप नहीं लगाया जा सकता था। उन्होंने जो अपराध किया था, उसकी सजा आजाद हिन्द फौज के ही नहीं; बल्कि सभी देशों के फौजी कानून में मौत ही है। कानून से प्राप्त सत्ता के आधार पर ही मैंने पूरी जांच के बाद सजा दी थी।

आजाद हिन्द फौज को यद्यपि देश की आजादी प्राप्त करने अपने प्रारम्भिक उद्देश्य में सफलता नहीं मिल सकी;

फिर भी हम सबको यह सन्तोष है कि हम मलाया, वर्मा और दक्षिण-पूर्वी एशिया में हिन्दुस्तानियों के जान-माल और इज्जत की रक्षा करने में पूरी तरह सफल हुए। रंगून के क्रिश्चियन ऐसोसियेशन और वर्मा इण्डियन ऐसोसियेशन के सभापतियों ने इस बारे में मुझे जो तार भेजे हैं, वे इस बयान के साथ में हैं, और वे इसके लिए खासे सबूत हैं।

३. लैफ्टिनेण्ट गुरुबचसिंह ढिल्लन

अपने वक्तव्य को सीधा-सादा बताते हुए श्री ढिल्लन ने कहा कि देहरादून के सैनिक विद्यालय में मैंने सीखा था कि देश की सेवा सर्वोपरि है। वहां चैथवुड हाल में मोटे सुनहरी अक्षरों में लिखा हुआ है कि "अपने देश की मान-प्रतिष्ठा, भलाई और सुरक्षा का सदा ही हर हालत में पहिला स्थान है। उसके बाद उनके सुख-सुभीते, सुरक्षा और भलाई का स्थान है, जो तुम्हारी कमान में हैं। तुम्हारी अपनी सुरक्षा और भलाई का स्थान सदा ही हर हालत में सबसे पिछे है।" तबसे मेरे विचार में अपने देश और अपने आदमियों का स्थान सर्वोपरि रहा है। फौज में रह कर मैंने सदा ही इस आदर्श के अनुसार देश की सेवा की है। मलाया और ईपोह में मैं अपनी यूनिट के साथ १८ मार्च १९४१ को आया था। जून १९४१ में आर्मी सिगनल स्कूल पूना में मुझे सिगनल सीखने के लिए भेज दिया गया था। पूर्व एशिया में युद्ध शुरू होने पर ५ दिसम्बर १९४१ को मैं जितरा में अपनी यूनिट में चला आया। इस क्षेत्र में जापानियों के साथ सबसे पहिली मुठभेड़ हमारी ही हुई थी। तीन दिन तक हमने उनको रोक

सफाई के वकील—पंडित जवाहरलाल नेहरू, सर तेजबहादुर सप्रू, डा० कैलाशनाथ काटजू,
कप्तान सहगल के पिता जस्टिस

रखा। उसके बाद हमारी फौज तितर-बितर हुई। मैंने और कप्तान हबीबुल रहमान ने ८० आदमियों को बटोरा। जितरा और अलोर स्टार के पतन और यहां हुई मुठभेड़ का उल्लेख करते हुए आपने कहा कि हम १४ दिसम्बर की शाम को कुआला केदाह से किश्तियों पर सवार होकर पेनांग आए। हमें पन्द्रह ही मिनट में पेनांग खाली करने के लिए कहा गया। १६ दिसम्बर की सवेरे हम निबांग तिबाल पहुचे। यहां मुझे और हबीब को पुलों की रक्षा का काम सौंपा गया। १६ दिसम्बर को हमें वहां से तालपिंग और फिर ईपोह आने का हुक्म दिया गया। लड़ाई शुरू होने के दिन ८ दिसम्बर से मैंने एक बार भी भरपेट खाना न खाया था। आराम करना तो सम्भव ही न था। बीमार होने से अस्पताल भेजा गया और वहां से सिंगापुर पहुंचा दिया गया। मैंने अच्छा होने पर अपनी यूनिट में जाना चाहा। उसके लिए व्यवस्था होते होते युद्ध सिंगापुर तक आ पहुंचा। ११ फरवरी से सिंगापुर के समर्पण करने की अफवाहें सुनने में आने लगीं। बिदादरी कैम्प से सिंगापुर आते हुए एक स्थान पर हजारों हिन्दुस्तानी तिरंगे झंडे लिए हुए इकट्ठा थे। एक ब्रिटिश कर्नल को जब मैंने यह दिखाया, तब उसने कहा कि जब हम उनकी रक्षा नहीं कर सकते, तब वे अपनी व्यवस्था क्यों न करें। १३ फरवरी को हमें सरकारी तौर पर बताया गया कि हमारे पांच सौ हवाई जहाज यहां पहुच जायेंगे और पेनांग की ओर से अमेरिकन हमला कर रहे हैं। वैसा कभी न हुआ और १५ फरवरी को कमांडिंग अफसर ने मुझे बुला कर कहा कि

सिंगापुर ने बिना शर्त आत्मसमर्पण कर दिया है। मैं यह सुन कर स्तब्ध रह गया। भारी हृदय और भीगी हुई आंखों से मैंने अपनी रिवाल्वर जमीन पर पटक कर अपने आदमियों से शस्त्र इकट्ठे करने को कहा। फरार पार्क में कर्नल हण्ट द्वारा फूजीवारा और मोहनसिंह के हाथों में दे दिए जाने की घटना पर श्री ढिल्लन ने कहा कि मुझे ऐसा लगा जैसे कि हमें अंग्रेजों ने अत्यन्त भीषण और असहाय अवस्था में छोड़ दिया हो।

मोहनसिंह मेरा अत्यन्त स्नेही साथी था। हम दोनों एक ही यूनिट में थे। लम्बी मानसिक कशमकश के बाद मैंने उसको अपना जी० सी० ओ० स्वीकार किया। पिछली घटनाओं, पूर्वीय सुरक्षापंक्ति के अनुभव और संसार के सबसे बड़े नौसेना के अड्डे के बात की बात में पतन हो जाने से मैंने यह जान लिया, कि अंग्रेज हिन्दुस्तान की जापानियों के आक्रमण से रक्षा नहीं कर सकेंगे।

मोहनसिंह का काम आसान न था। ७५ हजार अफसरों और सैनिकों को सम्भालने की उसने कभी कल्पना भी न की थी। फिर, उन परिस्थितियों में, जो संसार में कभी न घटी थीं। जिस पराजित और निराश सेना में अनैतिकता छा गई थी, उसमें नियन्त्रण और अनुशासन रखना इतना आसान न था। आजाद हिन्द फौज में स्वेच्छा से भरती होने के कारण राजनीतिक विचारों की स्वतन्त्रता देना जरूरी हो गया था। जापानी जिन पर सन्देह करते थे, उन अफसरों और आदमियों की उनके हाथों से रक्षा करनी पड़ती थी। हिन्दुस्तानी नागरिकों की भी रक्षा का

सवाल था। हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की रक्षा और मानवीय कानूनों का ध्यान रखते हुये यह सब करना था। जापानियों सरीखे शकी लोगों से निपटना भी आसान न था।

मलाया में जापानियों की करतूतों और उसकी रक्षा की जिम्मेवारी लेने वाली अंग्रेजी सरकार की असहाय स्थिति हमने आंखों से देखी थी। हिन्दुस्तान पर हमला होने पर उसकी हालत पर विचार करते ही मैं कांप जाता था। मैंने इस समय समझा कि डेढ़ शताब्दि में ब्रिटिश शासन ने मेरे अभागे देश का क्या हाल कर दिया है? जब कि अंग्रेजों ने अपने लाभ के लिए हमारा शोषण किया है और हमारी सेनाओं से अपने साम्राज्य के सारे युद्ध लड़े हैं, तब उन्होंने हमें अपने देश की रक्षा तक के लिए समर्थ नहीं बनाया और हमें सदा गुलाम बनाए रखने के लिए नपुंसक भी बना दिया। यदि हमारा देश स्वाधीन होता और उसको अपनी रक्षा करने की तय्यारी करने दी गई होती, तो उसकी सीमा को लांघने का किसी ने विचार तक न किया होता। मोहनसिंह जिस आजाद हिन्द फौज का संगठन कर रहे थे, उसमें मुझे अपने देश के लिए एक नयी आशा दीख पड़ी। मैंने अनुभव किया कि यदि अब भी सुदृढ़ राष्ट्रीय सेना खड़ी की जा सके, तो वह विदेशी सत्ता से देश को स्वतन्त्र करने के साथ साथ विश्वासघात करने पर जापानियों का भी सामना कर सकेगी और पूर्वी एशिया में अपने देशवासियों की भी रक्षा कर सकेगी। मुझे ऐसे लगा, जैसे भारतमाता मुझे

: ७ :

आजाद हिन्द सरकार और फौज की स्थिति

सफाई के गवाहों के बयान ८ दिसम्बर १९४५ को शुरू हुए। पहिले गवाह जापानी विदेशविभाग के सातुते ओहाता ने बताया कि २१ अक्टूबर १९४३ को अस्थायी आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की घोषणा की गई थी और उसके प्रति जापानी सरकार का व्यवहार सर्वथा स्वतन्त्र, स्वाधीन तथा समानान्तर सरकार का-सा था। इसी नाते जापानी सरकार ने उसकी सहायता की थी। जापानी सरकार के प्रकाशन-विभाग की ओर से अस्थायी आजाद हिन्द सरकार के सम्बंध में २३ अक्टूबर १९४३ को प्रकाशित की गई विज्ञप्ति और तत्कालीन प्रधानमन्त्री जनरल तोजो के वक्तव्य की नकलें उपस्थित करते हुए गवाह ने बताया कि जापान सरकार के राजदूत की हैसियत से श्री हाचिया को आजाद हिन्द सरकार के यहां भेजा गया था।

इस बारे में जापानी सरकार द्वारा प्रकाशित विज्ञप्ति भी अदालत में पेश की गई।

दूसरे गवाह सुनीची मत्सुतो ने कहा कि मैं परराष्ट्रविभाग में उपमन्त्री के पद पर युद्ध की समाप्ति तक रहा। अन्य देशों के साथ हुई संधियों को देखने का काम जिस समिति के आधीन था, मैं उसका प्रधान था। अस्थायी आजाद हिन्द सरकार की घोषणा मैंने अपने दफ्तर में देखी थी। इस सरकार को जर्मनी, इटली, क्रोशिया, मंचूको-चीन, थाईलैण्ड, फिलिपाइन और वर्मा की सरकारों ने स्वीकार किया था। ६ नवम्बर को टोकियो में हुए सम्मेलन में जनरल तोजो द्वारा दिए गए भाषण के समय मैं उपस्थित था। जिरह करने पर गवाह ने कहा कि टोकियो में मैं सुभाष बाबू से मिला था। जापान सरकार ने उनको जर्मनी से लाने का प्रबंध किया था। जापान सरकार को यह मालूम था कि वे अपने देश की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील हैं। जापान के युद्ध-सम्बंधी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उनकी सहायता प्राप्त करना आवश्यक समझा गया। वे आजाद हिन्द सरकार के राष्ट्रपति और आजाद हिन्द फौज के सिपहसालार थे। अप्रैल १९४३ में वे टोकियो पहुंचे थे। श्री देसाई के प्रश्न के उत्तर में गवाह ने कहा कि जापानी सरकार के युद्ध-सम्बंधी उद्देश्यों में भारत को स्वतंत्र करना भी शामिल था।

तीसरे गवाह जापानी सरकार के परराष्ट्रविभाग के उपमंत्री श्री रेंजो सवादा ने बताया कि आजाद हिन्द सरकार के यहां जापानी राजदूत भेजने का निश्चय नवम्बर १९४४ में कर

लिया गया था। इसके अनुसार श्री हाचिया मार्च १९४५ में रंगून पहुंच गए थे। जिरह किए जाने पर गवाह ने कहा कि जापान सम्राट व सरकार की अनुमति पर ही श्री हाचिया को मैंने रंगून भेजा था। वहां पहुंचने की सूचना भी उसने मुझे दी थी। आजाद हिन्द सरकार के अस्थायी होने के कारण उनको कोई प्रमाण-पत्र देना आवश्यक न समझा गया था, किंतु श्री सुभाषचन्द्र बोस के आग्रह पर वह भेजा गया था। उस पर जापान के सम्राट् के हस्ताक्षर थे। परिस्थितियां बिगड़ जाने से वह उनको मिल नहीं सका। लेकिन, इसके बिना भी वह अपना काम करते रहे। इसी हैसियत से वह आजाद हिन्द सरकार के परराष्ट्रमन्त्री से मिले और वह भी उनसे मिलने आया।

चौथे गवाह आजाद हिन्द सरकार के यहां जापानी सरकार के राजदूत श्री तिरो हाचिया ने बताया कि मैं मार्च १९४५ में रंगून पहुंचा था। वहां आजाद हिन्द सरकार के परराष्ट्रमंत्री कर्नल चैटर्जी से मिला था। २४ अप्रैल १९४५ को मैं रंगून से बंगकौक चला गया। इसी समय आजाद हिन्द सरकार भी बंगकौक चली आई थी। यहां आने तक मैं बंगकौक में ही रहा। मैं रंगून आते हुए कोई प्रमाण-पत्र अपने साथ न लाया था। मैंने आजाद हिन्द सरकार के परराष्ट्रमन्त्री को स्वयं सूचना दी थी कि मैं जापान सरकार का प्रतिनिधि मंत्री हूँ। तार तो मिला कि प्रमाण-पत्र भेज दिया गया है; किन्तु मुझे वह मिला नहीं। जिरह करने पर गवाह ने कहा कि मैं न तो प्रमाण-पत्र और न कोई दूसरा ही पत्र अपने साथ लाया था। मैंने कर्नल चैटर्जी

को मार्च १९४५ में रंगून पहुंचने के दो-तीन दिन बाद ही अपने वहां पहुंचने की सूचना दी और उनसे मिला। मैं श्री अय्यर से भी मिला। वे भी दो-तीन बार मेरे यहां आये। मैंने श्री सुभाष बोस से मिलना चाहा। मुझे कर्नल चैटर्जी ने बताया कि मेरे पास प्रमाण-पत्र न होने से वे मुझसे नहीं मिलेंगे। मैंने रंगून पहुंचने के चार-पांच दिनों बाद ही प्रमाण-पत्र के लिये टोकियो तार दिया। मुझे तार मिला कि प्रमाण-पत्र भेजे जा रहे हैं। बंगकौक में भी मुझे मई-जून में तार मिला कि प्रमाण-पत्र भेज दिया गया है। मैं श्री काकितसुबो और श्री ओह्वा के साथ रंगून से रवाना हुआ था। २१ नहीं, अपितु २३-२४ अप्रैल को जापानी व्यापारियों ने रंगून खाली करना शुरू किया। जापानी सेनाओं की हलचलों या गतिविधि के साथ मेरा कुछ भी सम्बन्ध न था। श्री देसाई के प्रश्न पर गवाह ने कहा कि कर्नल चैटर्जी मुझसे बंगकौक में भी मिले थे। इसलिये मैं समझता हूँ कि आजाद हिन्द सरकार भी वहां चली आई थी।

पांचवें गवाह मेजर जनरल सादाशी काताकुरा ने कहा कि आजाद हिन्द फौज के बारे में मुझे १९४३ में जानकारी मिली थी। आजाद हिन्द सरकार की भी मुझे जानकारी थी। श्री सुभाषचन्द्र बोस से मैं जुलाई १९४३ में रंगून में मिला था। इम्फाल में आजाद हिन्द फौज स्वतन्त्र रूप से लड़ी थी। उसका लक्ष्य हिन्दुस्तान की आजादी था। पहली छापामार रेजीमेंट जनवरी १९४४ में रंगून आ गई थी। शा नवाजखां इसके कमाण्डर थे। फरवरी या मार्च १९४४ में उसने मोर्चे पर

कूच की। गवाह ने नक्शा बनाकर इस रेजीमेन्ट की युद्धक्षेत्र में जो स्थिति थी, उसे विस्तार के साथ बताया। यह तय हुआ था कि हिन्दुस्तान के विजित प्रदेश आजाद हिन्द सरकार के आधीन कर दिये जायँगे। वहां की शासन-व्यवस्था उसी के आधीन रहेगी। हिन्दुस्तान की सीमा में प्रवेश करने के अवसर के लिए जापान सरकार और आजाद हिन्द सरकार की ओर से पृथक् पृथक् घोषणा-पत्र तय्यार किए गए थे। एक पर लैफ्टिनेण्ट-जनरल कावाबे के और दूसरे पर श्री सुभाषचन्द्र बोस के हस्ताक्षर थे। जापानी घोषणा-पत्र में लिखा गया था कि उनकी लड़ाई अंग्रेजों के साथ है, भारतीयों के साथ नहीं। जो भी प्रदेश या युद्ध-सामग्री जापानी अधिकार में आयगी, वह सब आज़ाद हिन्द फौज को सौंप दी जायगी। दूसरे घोषणा-पत्र में लिखा गया था कि आजाद हिन्द फौज हिन्दुस्तान की आजादी के लिए लड़ रही है। जापानी सेना द्वारा विजित प्रदेश हमें सौंप दिये जायेंगे। सरकारी वकील की जिरह पर गवाह ने कहा कि इम्फाल पर आक्रमण करने की योजना जनवरी १६४४ में तय्यार कर ली गई थी और आक्रमण मार्च में किया गया था। आजाद हिन्द फौज की चार डिविजन थीं। प्रत्येक में आठ हजार सैनिक थे। शुरू में इम्फाल के मोर्चे पर दस हजार सैनिक थे। बाद में उनकी संख्या बढ़ती रही। छापामार रेजीमेण्ट नं० १. २. ३. के अलावा अन्य कई फौजें भी लड़ाई में शामिल हुईं। जापानियों ने हिन्दुस्तानी सैनिकों के साथ कभी भी दुर्व्यवहार नहीं किया। उनसे मेहनत-मजूरी

का काम भी नहीं लिया गया। जो आजाद हिन्द फौज में भरती नहीं होते थे, उनके साथ युद्धबन्दियों का-सा व्यवहार किया जाता था। उनकी डाक पर भी किसी प्रकार की देखरेख न थी। रंगून से वे ब्राडकास्ट भी करते थे। दोनों एक दूसरे को सैल्यूट करते थे। दक्षिणी फौज के इनचार्ज फील्ड मार्शल तेरौची ने जनरल कावाबे को १६४३ की शरद ऋतु में यह आदेश दिया था कि विजित प्रदेश और अधिकृत युद्धसामग्री आजाद हिन्द फौज के आधीन कर दी जाय। मैंने श्री सुभाषचन्द्र बोस की घोषणा का अनुवाद और जापानी घोषणा की मूल प्रति देखी थी। ये जनवरी १६४४ में तय्यार की गई थी। सफाई के वकील श्री देसाई के जिरह करने पर गवाह ने फिर कहा कि कप्तान शाह नवाज हाकाफालन के मोर्चे पर मार्च १६४४ में आए थे। वह इम्फाल मोर्चे के ही अन्तर्गत था। अप्रैल १६४४ में आजाद हिन्द फौज की नं० २ रेजीमेएट पलेल में थी। आजाद हिन्द फौज के हिन्दुस्तान की सीमा में प्रवेश करने पर अप्रैल १६४४ में जापानी सरकार और श्री सुभाषचन्द्र बोस ने कर्नल शाह नवाजखां को बधाई का संदेश भेजा था।

सफाई के छठे गवाह थे आजाद हिन्द सरकार के प्रचार-मन्त्री श्री एस० ए० अय्यर। आपने बताया कि १६४१ में मैं बैंगकौक में था। जापानी युद्धघोषणा के बाद मैंने बर्मा के रास्ते हिन्दुस्तान आने का प्रयत्न किया। लेकिन, यह सीमा बन्द कर दी गई थी। मध्य जून १६४२ में बैंगकौक में हुए सम्मेलन में मैं भी उपस्थित था। पूर्वी एशिया में सभी देशों के हिन्दुस्तानी

प्रतिनिधि इसमें उपस्थित थे। मैं दर्शक के रूप में इसमें उपस्थित हुआ था। बंगकौक सम्मेलन में आजाद हिन्द संघ कायम किया गया। मुझे इसका प्रकाशन-विभाग सौंपा गया। फरवरी १६४३ तक बंगकौक में मैं यह काम करता रहा। ३ मार्च को मैं सिंगापुर आ गया। यहां मैं संघ के प्रधान श्री रासबिहारी घोस से मिला। उससे पता चला कि संघ का सदर मुकाम सिंगापुर में लाया जा रहा है। मैं नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस को पहिले से जानता था। वे २ जुलाई १६४३ को सिंगापुर आये थे। ४ जुलाई को हिन्दुस्तानी प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ। श्री रासबिहारी घोस ने इसमें कहा कि मैं टोकियो से सुभाष बाबू के रूप में एक सौगात लाया हूँ और उनके हाथ में संघ की बागडोर सौंपता हूँ। तब हर्ष में की गई करतलध्वनि से सभास्थान गूँज उठा। नेताजी ने उसमें यह महत्वपूर्ण घोषणा की कि मैं शीघ्र ही आजाद हिन्द सरकार की स्थापना करना चाहता हूँ। इस पर चारों ओर से हर्ष-ध्वनि हुई। २१ नवम्बर १६४३ को एक और प्रतिनिधि-सम्मेलन सिंगापुर में हुआ। संघ की रिपोर्ट पढ़ी जाने के बाद नेताजी ने आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की घोषणा की। हर्षध्वनि से भवन गूँज गया। सरकार के मंत्रियों के नामों की घोषणा करने के बाद सुभाष बाबू ने हिन्दुस्तान के प्रति निष्ठा की शपथ ली। उनके बाद मंत्रियों ने हिन्दुस्तान और नेताजी के प्रति निष्ठा की शपथ ली। इसके बाद इंग्लैंड और अमेरिका के विरुद्ध नियमित रूप से युद्ध की घोषणा की गई। मुझे इस सरकार में भी प्रचार

और प्रकाशन विभाग के मंत्री का काम सौंपा गया। आजाद हिन्द संघ के संगठन से सरकार का सारा काम चलता था। अदालत में पेश की गई घोषणा और मंत्रियों की नामावलि को गवाह ने ठीक बताया। मलाया में इस सबका स्वागत किया गया था। अपने देश की आजादी के लिये लड़ने के साथ-साथ उन्होंने अपनी सुरक्षा भी अनुभव करनी शुरू की। इस सरकार की ओर से मलाया के हिन्दुस्तानियों को राष्ट्रीय ढंग पर शिक्षा देने की व्यवस्था की गई। स्वास्थ्य तथा दवा-दारू आदि का भी संघ की ओर से प्रबन्ध किया गया। अराजकता से हिन्दुस्तानियों के जानमाल की रक्षा की गई। संघ ने लोगों से सरकार के प्रति निष्ठा की शपथ ली। जून १६४४ तक ऐसे लोगों की संख्या २३२५६२ तक पहुंच गई थी। सरकार ने चन्दा भी इकट्ठा किया। रंगून में अप्रैल १६४४ में आजाद हिन्द का राष्ट्रीय बैंक भी खोला गया। ४३४३६४६ डालर और १८ सेण्ट चंदे में जमा हुए थे। आभूषण आदि के रूप में ८६३११ डालर इकट्ठा हुये थे। युद्ध से पहिले डालर की कीमत रुपये से अधिक ही थी। श्री दीनानाथ बैंक के डाइरैक्टर और मैं चेयरमैन था। मन्त्री होने से मुझे मालूम है कि फौज में भरती बिलकुल स्वेच्छा से होती थी। हमारे पास स्वेच्छा से भरती होने वाले इतने लोग रहते थे कि हम शस्त्रास्त्र के अभाव में उनको सैनिक शिक्षा नहीं दे सकते थे। सुभाष बाबू के सिंगापुर आने के दो-तीन मास बाद ही शासन-सम्बन्धी शिक्षा देने के लिए भी एक स्कूल खोला गया था। जापानी सरकार और आजाद हिन्द सरकार के सम्बन्ध परस्पर मैत्री

"हमारा संघर्ष" नाम का पेम्फलेट मैंने देखा, पर पढ़ा न था। सेना में भरती होने के लिये की गई ज्यादतियों का मुझे कुछ भी पता नहीं। जापानियों के उसके गठन में भाग लेने की भी मुझे जानकारी नहीं है। जापान सरकार द्वारा आजाद हिंद सरकार के स्वीकार किये जाने की घोषणा स्वयं नेताजी ने की थी। गजट में भी इसे प्रकाशित किया गया था। सरकार की नीति और निर्णयों को संघ के मन्त्री कार्य में परिणत करते थे। रेडियो के ब्राडकास्ट में जापानियों का कुछ भी दखल या नियंत्रण न था। हिन्दुस्तान को चावल भेजने का प्रस्ताव हिन्दुस्तान की जनता और सरकार की जानकारी के लिये सिंगापुर रेडियो से जुलाई या अगस्त १९४३ में किया गया था। बर्मा के किसी भी बन्दरगाह से वह भेजा जा सकता था। बर्मा में चावल की कमी न थी। सफाई के वकील के पूछने पर श्री अय्यर ने कहा कि जुलाई १९४३ में जनरल तोजो सिंहापुर आकर नेताजी से मिले थे।

अण्डमान में आजाद हिन्द सरकार के चीफ कमिश्नर लैफ्टिनेण्ट कर्नल ए० डी० लोकनाथन सफाई के सातवें गवाह थे। आपने कहा कि मैं सितम्बर १९४२ में आजाद हिन्द फौज में शामिल हुआ था। बंगकोक सम्मेलन में ११० प्रतिनिधि उपस्थित थे और ६०-७० प्रस्ताव पास हुए थे। अपने जान, माल और सम्मान की रक्षा करने के लिये संगठित होना सम्मेलन का मुख्य प्रस्ताव था। फौज के संगठन करने और राष्ट्रीय कांग्रेसके आदर्शों के पालन करने का भी निश्चय किया गया था। जापानियों के

संरक्षण और सहायता के प्रश्न पर श्री रासबिहारी बोस और कप्तान मोहनसिंह में मतभेद पैदा हो गया। श्री रासबिहारी का झुकाव जापानियों की ओर था और कप्तान मोहनसिंह सर्वथा स्वतन्त्र रहकर समानता के नाते काम करना चाहते थे। जापानियों के हस्तक्षेप के कारण कप्तान मोहनसिंह ने आजाद हिन्द फौज को भंग करने का निश्चय किया और अपनी गिरफ्तारी से पहले वे इस आशय का आदेश का एक सीलबंद लिफाफे में बंद करके रख गये थे। दिसम्बर १९४२ के बाद मैं बिदादरी में फौज के सदर मुकाम में था। मैं मेडिकल विभाग का अध्यक्ष था। सुभाष बाबू को मैं जानता था। उनके जुलाई १९४३ में सिंगापुर आने पर मैं उनसे मिला। आजाद हिन्द सरकार की स्थापना के समय मैं उपस्थित था। मैं मन्त्रिमण्डल में भी था। नवम्बर १९४३ में सुभाष बाबू टोकियो गये। १९४४ में हमारी सरकार रंगून आ गई। अण्डमान और निकोबार के आजाद हिन्द सरकार के आधीन किये जाने, २१ मार्च १९४४ को पोर्ट ब्लेयर में उसके लिये विशेष समारोह मनाये जाने और उसमें जापानी अफसरों के भी उपस्थित रहने का वर्णन करते हुये आपने कहा कि 'चीफ कमिश्नर' की हैसियत से वहां का शासन मेरे हाथों में सौंप दिया गया था। मुझे पांच साथियों के साथ श्री सुभाषचन्द्र बोस ने वहां भेजा था। मेरे सहायक मेजर आलवी थे, जो वहां के शिक्षामन्त्री बनाये गये थे। लेफ्टिनेण्ट शोभासिंह अर्थमन्त्री और लेफ्टिनेण्ट इकबाल पुलिस विभाग के अध्यक्ष थे। १९४४ के दिसम्बर मास तक मैं वहां रहा। मेजर आलवी मेरे

स्थान में नियुक्त किये गये। अण्डमान का नाम 'शहीद द्वीप' और निकोबार का नाम 'स्वराज्य द्वीप' रख दिया गया था। फौज में स्वेच्छा से भरती की जाती थी। कभी जोर-जबरदस्ती नहीं की गई। इंग्लैण्ड और अमेरिका के विरुद्ध नियमित रूप से युद्ध की घोषणा की गई थी। इस सबसे मलाया के हिंदुस्तानियों को बहुत बल मिला। रंगून में आत्मसमर्पण करने से पंद्रह दिन पहिले वहां का सारा इलाका हमारे आधीन था। उसमें नेताजी के आदेश के अनुसार कानून और व्यवस्था हमने ही कायम रखी थी। जापानियों ने जब रंगून पर अधिकार किया था, तब दस हजार हिन्दुस्तानी मारे गये थे। इसको रोकने और चीनी, बर्मी तथा हिन्दुस्तानी आदि सभी के जान-माल की रक्षा करने का भार हम पर था। मलाया और बर्मा में नागरिकों में से फौज के लिये भरती की गई थी।

सरकारी वकील की जिरह पर श्री लोकनाथन ने कहा कि अण्डेमान और निकोबार के बारे में घोषणा टोकियो से की गई थी और मैं सुभाष बाबू से अधिकार-पत्र लेकर वहां गया था। जापान सरकार का पत्र भी मुझे साथ ले जाने को दिया गया था। मैं प्रतिमास अपनी रिपोर्ट कोई और प्रबन्ध न होने से जापानियों की मार्फत भेजा करता था। पहिले मुझे वहाँ का चीफ कमिश्नर और बाद में एडमिनिस्ट्रेटर बनाया गया। स्कूलों के लिये जापान सरकार से रुपया उधार लिया जाता था। अनुमान से ३० से ३३ तक स्कूल खोले गये थे। वहाँ की आन्तरिक व्यवस्था पर प्रतिमास तीन हजार तक खर्च किया

जाता था। पोर्ट ब्लेयर में मार्च १९४४ में समारोह किया गया था। पुलिस का महकमा हमारे हाथ में न दिये जाने से हमने अन्य महकमे भी अपने हाथ में नहीं लिये। जब यह महकमा देने को जापानी अधिकारी तय्यार हुये, तब मुझे नेताजी का उनको मिलने का तार मिला। उन्होंने यहां के समाचार जानने के लिये मुझे बुलाया था। गुप्तचरी के लिये जापानी पुलिस का महकमा अपने हाथ में रखना चाहते थे। यहां से भेजी गई रिपोर्टों पर कुछ सवाल पूछने के बाद सरकारी वकील ने पूछा कि-क्या आजाद हिन्द फौज में भरती करने के लिये रिश्वत का सहारा लिया जाता था? श्री लोकनाथन ने कहा कि नहीं। इसी प्रकार इसी निमित्त से कसन्ट्रेशन कैम्प में ले जाये जाने, मारपीट करने, खड़े रखने आदि की ज्यादतियों के काम में लाये जाने से भी आपने इनकार किया मारपीट की और कहा कि एक घटना मुझे मालूम हुई थी। उसकी जांच की गई थी। २४ अप्रैल १९४५ से पन्द्रह दिन तक रंगून शहर पर हमारा अधिकार रहा। सुभाष बाबू के रंगून से विदा होने पर मुझे बर्मास्थित आजाद हिन्द फौज का सिपहसालार बना दिया गया था। सुभाष बाबू के जाने और अंग्रेज सेनाओं के आने तक रंगून की सारी व्यवस्था हम लोगों के हाथों में रही।

सफाई के आठवें गवाह रंगून के लकड़ी के व्यापारी और आजाद हिन्द बैंक के डाइरैक्टर श्री दीनानाथ थे। आपने कहा कि मैं आजाद हिन्द संघ का सदस्य था। बैंक के चेयरमैन श्री ऐस० ए० अय्यर थे और डाइरैक्टर थे—एस० एस० बशीर,

एच० आर० बेताई ए० ऐस० माथा, कर्नल अलगप्पन और मैं। रंगून में नेताजी फण्ड कमेटी, भी कायम की गई थी। रुपया बैंक में और सरकार के अर्थविभाग के यहाँ भी जमा किया जाता था। बर्मा में पन्द्रह करोड़ से अधिक और मलाया में लगभग पांच करोड़ चन्दा जमा किया गया था। बैंक की रंगून शाखा में ३०-४० लाख तक जमा रहता था। अँग्रेजों ने जब बैंक बन्द किया तब आजाद हिन्द फौज का उसमें ३५ लाख रुपया जमा था, ५० वर्गमील क्षेत्रफल और १५ हजार आबादी की जियावाड़ी रियासत में आजाद हिन्द सरकार की हकूमत थी। वहाँ एक चीनी की बड़ी मिल भी थी। उसकी सारी आमदनी सरकार को मिलती थी। आजाद हिन्द सरकार के निर्णयों को पूरा करने का काम आजाद हिन्द संघ करता था। प्रत्येक शाखा में अनेक विभाग थे। इनमें अर्थविभाग, रंगरूट-विभाग, आन्दोलन विभाग, स्वास्थ्य-विभाग हवाई हमला सुरक्षा विभाग, महिला विभाग और बालचर-विभाग मुख्य थे। जो लोग अपनी जायदादें छोड़ कर भाग गये थे, उनकी जायदाद की रक्षा का काम भी मुख्य था। बालकों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। बर्मा में हिन्दुस्तानियों के जानमाल की हिफाजत करने का भी काम किया गया। जापानी फौजी पुलिस जरा से भी सन्देह या बहाने पर हिन्दुस्तानियों को गिरफ्तार करती और तङ्ग करती थी। इससे भी उनकी रक्षा की गई।

जिरह करने पर आपने कहा कि यदि जापानी किसी की जायदाद वगैरः जब्त करना चाहते थे, तो उसकी भी आजाद

हिन्द सरकार रखा करती थी। अप्रैल १६४४ में एक रसद बोर्ड फौज की जरूरतें पूरी करने के लिये बनाया गया था। श्री ए० हबीब इसके प्रधान थे और सर्व श्री खन्ना, बेताई, विझानी, राघवन दाद, सहगल, सरकार, मैं, अर्थमंत्री थे संघ के प्रधान और संघ के प्रधानमन्त्री इसके सदस्य थे। जून १६४४ में मैंने सरकार के प्रति निष्ठा की शपथ ली थी। रंगून में बैंक की रजिस्ट्री की गई थी और उसके हिस्सेदार भी थे। ५० लाख की पूंजी थी। लोगों को और सरकार को रुपये पर व्याज दिया था। सरकार का रुपया अर्थमन्त्री के नाम पर जमा किया जाता था। फौज का खाता अलग था। बैंक के खुलते ही अप्रैल १६४४ में यह खाता खोला गया था। सारा रुपया जापानी नोटों में था। अंग्रेजी नोट और सिक्के भी थे। ये ५०-६० हजार के करीब के थे। लोगों का ३०-४० लाख तक रुपया जमा रहता था। अर्थमन्त्री के नाम पन्द्रह लाख से एक करोड़ तक रुपया जमा रहता था। दस से तीस लाख तक हर मास अर्थमन्त्री के नाम से रुपया उठाया जाता था। सबसे बड़ी रकम उसके नाम पर एक बार सवा करोड़ तक पहुंच गई थी। फौज के नाम पर सबसे बड़ी रकम तीस लाख तक की थी। दूर स्थानों से कुछ रकमें सीधे अर्थ-विभाग को भेज दी जाती थीं। बर्मा में जनवरी १६४४ से अप्रैल १६४५ के बीच १५ करोड़ से अधिक रुपया चन्दे में जमा हुआ था। मैं १ जून १६४५ तक रंगून में रहा। उसके बाद मैं गिरफ्तार करके हिन्दुस्तान लाया गया। अंग्रेजों के रंगून आने पर जब बैंक बन्द किया गया उससे पहिले ५ मई को आजाद हिन्द फौज का

३५ लाख रुपया उसमें जमा था। ७-८ मई को डाइरेक्टरों की सभा में मैनेजर ने सारा हिसाब पेश किया था। १६ मई को बैंक बंद कर दिया गया था। हमने यह ऐलान कर दिया था कि जो चाहे बैंक से अपना रुपया उठा ले और मैनेजर को इस बारे में पूरा अधिकार दे दिया गया था। आजाद हिन्द फौज के लोग फिर भी अपना रुपया बैंक में भजते रहें। उनके लिये दूसरा कोई चारा न था।

जियावाड़ी रियासत के कागजात मैंने नहीं देखे। श्री परमानन्द नाम के एक सज्जन उसके मालिक थे। वह मालिक थे या मैनेजर,—यह मुझे ठीक ठीक मालूम नहीं। पर, उसने ही उसको आजाद हिन्द सरकार के हाथों में दिया था। नेताजी की अपील पर एक सभा में उसने इसके देने की घोषणा की थी। उसको कुछ समय के लिये रसदमन्त्री बनाया गया था। सरकार का एक प्रतिनिधि उस रियासत का प्रबन्ध करता था और चीनी मिल की सारी आमदनी सरकार के नाम पर बैंक में जमा की जाती थी।

नवें गवाह शिवसिंह ने कहा कि मैं आजाद हिन्द फौज में अगस्त १६४३ से अप्रैल १६४५ तक रहा था। मैं वहां एक सैनिक स्कूल का अध्यक्ष था। वहां की आबादी १५ हजार के लगभग थी। वहाँ एक मुर्गीखाना और एक सैनिक अस्पताल भी था। आहत और निष्क्रिय लोगों के लिये भी वहाँ आश्रय घर बनाये गये थे। चीनी कल और 'आजाद हिन्द दल' का भी बड़ा दफ्तर वहां था। लैफ्टिनेण्ट विट्ठलराव इस दल के मुखिया थे।

श्री घोष पी०डब्ल्यू०डी० के अध्यक्ष थे। इस प्रदेश से जापानियों या बर्मियों को कोई वास्ता न था। बर्मी व जापानी सरकार में गलतफहमी पैदा होने पर हमारी सरकार उसको रफा-दफा करती थी। अधिकृत क्षेत्र के नामजद गवर्नरजनरल चैटर्जी का हैडक्वाटर यहाँ ही था। जिरह करने पर श्री शिवसिंह ने कहा कि जनवरी १९४२ में मैं ईपोह में युद्ध-बंदी बनाया गया था। अपनी फौज और सरकार कायम होने पर अगस्त १९४२ में मैं उसके साथ हो गया। जंगल में अंग्रेजों द्वारा अकेले छोड़ दिये गये फौजियों के भले के लिये मैंने ब्राडकास्ट किया था कि वे सुरक्षित स्थान में आ जांय। मैंने उनसे जापानियों का साथ देने को नहीं कहा था। मार्च १९४२ में सिंगापुर में मैं मोहनसिंह से मिला था। ईपोह से कुआलालम्पूर, सैगोन और चिदादरी आदि भेजे जाने, जून १९४२ में बंगकौक सम्मेलन में शामिल होने, वहाँ से सिंगापुर जाने और सितम्बर १९४२ में सिंगापुर आने का वर्णन करते हुये आपने कहा कि फौज में शामिल हो जाने परभी मैंने तब तक उसके लिये काम नहीं किया, जब तक कि जापानी सरकार ने हमारी फौज और सरकार की सत्ता को स्वीकार नहीं कर लिया था। अक्तूबर १९४४ में अराकान और सिंगलाडौन कैम्प में भेजे जाने के बाद १९४३ के जनवरी मास में मुझे गिरफ्तार कर लिया गया। कर्नल गिल के सभी साथी गिरफ्तार कर लिये गये थे। एक महीने के बाद मुझे रिहा कर दिया गया। सितम्बर १९४३ में मैं आजाद हिन्द फौज में शामिल हुआ। उसकी जो थोड़ी-बहुत सेवा मैंने की, उसका वर्णन

में तब कहूंगा, जब मुझ पर फौजी अदालत में मुकदमा चलाया जायगा। कप्तान ब्राउन को आजाद हिन्द फौज ने गिरफ्तार किया था। जियावाड़ी, वहाँ की फौज और सरकारको हवाई हमले आदि से बचाने के लिये मैंने चालाकी से काम लिया और बर्मी लोगों में यह फैला दिया कि वहाँ कोई फौज वगैरः नहीं है। केवल अस्पताल ही है। मैंने कोई समाचार अंग्रेजों को नहीं दिये न मैंने हिन्दुस्तान को भाग निकलने की कोशिश की और न मुझे उनसे एक हजार रुपया ही मिला। जियावाड़ी रियासत और चीनी मिल का परमानन्द मैनेजर था। वहाँ एक महल भी है और उसके राजा अब भी हिन्दुस्तान में जीवित हैं। जियवाड़ी बर्मा में है। जून १६४४ में बर्मा में जापानियों का अधिकार था। आजाद हिन्द सरकार के साथ यह तय हो गया था कि जिस जायदाद के हिन्दुस्तानी मालिक उसको छोड़ कर भाग गये हैं वह उसको सौंप दी जायगी। सफाई के वकील के पूछे जाने पर श्री शिवसिंह ने कहा कि सेगौन में मुझे कर्नल सेंतो ने बतलाया था कि जापान समस्त पूर्वी एशिया की आजादी के लिये लड़ रहा है। उसमें हिन्दुस्तान भी शामिल है।

भारत सरकार के कामनवैल्थ रिलेशन्स विभाग के श्री नन्द ने बताया कि युद्ध से पहिले हिन्दुस्तानियों की संख्या बर्मा में १०१७८२५, मलाया में ८ लाख, थाईलैण्ड में ३५००० हिन्द चाइना में ६००० हांगकांग में ४७४५, डच ईस्ट इण्डीज में २७००६, फ्रेंच हिन्द चीन में ६००० और जापान में ३०० थी। जिरह में आपने बताया कि जापानी युद्ध-घोषणा के बाद केवल

२४ हिन्दुस्तानी जापान में रह गये थे। अन्य देशों से कितने हिन्दुस्तानी चले आये थे—इसका कुछ भी पता नहीं।

जापान सरकार से प्राप्त किये गये कुछ कागजपत्र जमुना सेग्र के फौजी सदर मुकाम के लैफ्टिनेण्ट कर्नल ई० के० ने पेश किये। उसने जनरल ईसनहोवर और जर्मन रेडियो के कुछ ब्राडकास्ट भी पेश किये, जो शिमला में दर्ज किये गये थे।

सफाई के अन्तिम और दसवें गवाह कप्तान आर० एम० अरशाद ने अपने लम्बे बयान में बताया कि अंग्रेजों द्वारा किये गये आत्मसमर्पण के समय मैं सिंगापुर में था। फरेर पार्क में कर्नल हण्ट द्वारा किये गये आत्मसमर्पण, मेजर फूजीवारा के भाषण और कप्तान मोहनसिंह की आजाद हिन्द फौज के लिए की गई अपील का विस्तार से उल्लेख करने के बाद आपने बताया कि उस समय युद्धबन्दी बनाये गये हिन्दुस्तानियों की संख्या ४५ से ५० हजार तक थी। जुलाई १९४२ के अन्त में आजाद हिन्द फौज में मैं शामिल हुआ था। इस मामले में अभियुक्त बनाये गये तीनों अफसरों को मैं जानता हूं। आजाद हिंद फौज में शामिल होने के समय मेरे सामने कई सवाल पैदा हुये। अपनी शिक्षा और बाद में अपने फौजी जीवन के कारण मैं राजनीति से दूर रहा। मैं गहरी चिन्ता में पड़ गया। अनजान लोगों से इस बारे में चर्चा करने में मुझे संकोच था। लेकिन मैं इस बारे में खूब गहरी चर्चा करना चाहता था। सिंगापुर में माउण्ट प्लेसेण्ट पर मैं कप्तान मोहनसिंह के सदर मुकाम के पास ही रहता था। कप्तान सहगल के साथ मेरा बारह-तेरह वर्ष पुराना परिचय था। कॉलेज

नहीं, सभी हिंदुस्तानियों की है। उसे कप्तान मोहनसिंह भंग नहीं कर सकते। अफसर सब कप्तान मोहनसिंह के साथ थे। श्री रासबिहारी बोस ने फौज के सदर मुकाम में आकर अपने हस्ताक्षरों से निकाला गया कप्तान मोहनसिंह की गिरफ्तारी का हुक्म पढा। कार्य समिति के अधिकांश सदस्यों ने भी इस पर स्तीफे दे दिये।

"हमने अपने को युद्ध-बंदी मानना शुरू कर दिया, पर जापानी सहमत न हुये। उन्होंने कहा कि हमने तुमको आजाद कर दिया है। बिना किसी अपराध के हम तुमको गिरफ्तार नहीं कर सकते और न हमारी दृष्टि में फौज ही अभी भंग हुई है। अफसरों और श्री रासबिहारी बोस में अनेक बार चर्चा हुई। कभी कभी कर्नल इवा कुरु भी हाजिर रहते थे। जापानियों के व्यवहार पर हमने अपना असन्तोष प्रगट किया और बगकौक के प्रस्तावों को मंजूर करने पर जोर दिया। एक बार तो हमने वेतन लेने से भी इनकार कर दिया। कुछ समय बाद कुछ रहोबदल करके फौज को जारी रखने का निश्चय किया गया। दो विभाग बनाये गये और दोनों के अलग अलग अफसर नियत किये गये। भरती सर्वथा स्वेच्छा से करने और पहिले भरती हुये लोगों को भी अलग होने का अवसर देने का निश्चय किया गया। अंग्रेज सेना के ढंग पर फौज के कई विभाग बनाये गये। फौज के लिये जोर-जबरदस्ती किये जाने की मुझे कुछ भी जानकारी नहीं है।

"कप्तान शाह नवाज़ को भी जापानियों के प्रति सन्देह

था। वे भी कनजु इवा कुल के साथ होने वाली चर्चा के समय उपस्थित रहते थे। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को टोकियो से बुलाने पर उन्होंने जोर दिया। जुलाई १९४३ में वे सिंगापुर आ गये। २१ अक्टूबर १९४३ को आज़ाद हिन्द सरकार की स्थापना की गई। सुभाष बोस 'राष्ट्रपति' बनाये गये और अगस्त में उनको फ़ौज का सिपहसालार भी बना दिया गया। अनिच्छुक लोगों से उन्होंने यह कहते हुए फौज से अलग हो जाने को कहा कि मैं नहीं चाहता कि कोई भी आदमी अपनी इच्छा के विरुद्ध मेरी कमान में रहे। १९४४ के शुरू में आजाद हिन्द सरकार का दफ्तर रंगून आ गया। फरवरी में पहिली डिविजन का सदर मुकाम भी रंगून में आ गया। इसी डिविजन के कुछ और यूनिट भी यहां आ गये।

अधिकृत प्रदेश की शासन-व्यवस्था के लिये संगठित किए गये 'आज़ाद हिन्द दल' और सिंगापुर तथा रंगून में उनकी शिक्षा के लिये स्थापित किये गये स्कूलों का उल्लेख करने के बाद गवाह ने कहा कि मार्च-अप्रैल १९४४ में मैं इम्फाल के मोर्चे पर गया था। यहाँ अधिकृत प्रदेश पर हमारा अधिकार था। इस प्रदेश में प्रवेश करने पर नेताजी और जापानी सेनापति की घोषणायें पढ़ी गईं। उनमें कहा गया था कि विजित प्रदेशों पर आज़ाद हिन्द सरकार का अधिकार रहेगा। मैं मणिपुर की ओर भी गया था। अप्रैल में मुझे मांडले बुला लिया गया। जुलाई में फिर इम्फाल भेजा गया। डिविजन नं० १ के कमांडर मेजर एम० जेड० कियानी अधिकृत प्रदेश की शासन-व्यवस्था

कर रहे थे। विशनपुर के कुछ क्षेत्र पर हमारा अधिकार था। मोर्चे से पलेल तक कोहिमा डिविजन में लगभग १५ हजार वर्गमील का यह क्षेत्र था।

रंगून के खाली किये जाने, सुभाष बाबू के वहां से विदा होने, अफसरों के साथ उनकी अन्तिम चर्चा होने, कर्नल लोकनाथन के सेनाध्यक्ष बनाये जाने और हिन्दुस्तानियों के जान-माल एवं सम्मान की रक्षा करने तथा मित्र-सेनाओं के सामने युद्ध-बंदी के रूप में आत्म-समर्पण करने के नेताजी के आदेश की चर्चा करने के बाद कप्तान अरशाद ने कहा कि २४ अप्रैल को जापानियों ने रंगून से अपनी सारी सेनायें हटा ली थीं और बर्मी सेना भी वहां नहीं थी। केवल आजाद हिन्द फौज के पांच-छः हजार फौजी वहां रह गये थे। मैंने शहर की सब व्यवस्था संभाल ली। बर्मा सरकार का प्रधानमंत्री तो रंगून में था, किन्तु उसके पास पुलिस वगैरः नहीं थी। मैं उसके पास गया। मैंने उसको अपनी सारी व्यवस्था समझाई और उसने हमें अपना काम जारी रखने को कहा। दूसरे दिन उसने अपने चीफ पुलिस अफसर को मेरे पास भेजा, जिसके साथ मैंने शहर की व्यवस्था के बारे में बातचीत की। चावल के डिपो तथा अन्य गोदामों को भी जापानी खुला ही छोड़ गये थे। शहर में अशान्ति होने की भी आशंका थी। हमने अपने सन्तरी तैनात किये। बर्मा-मन्त्रिमण्डल के सामने भी मैंने अपनी व्यवस्था का ब्यौरा पेश किया। कहीं कोई गड़बड़ नहीं हुई। २५-२६ अप्रैल को मुझे पता चला कि सेक्रेट्रिएट के सबसे बड़े अफसर रावस

आस्ट्रेलियन एयर फोर्स के विंग कमाण्डर ऐल० हडसन भी हैं। मैं तुरन्त उनके पास गया। सब कार्य का ब्यौरा उनको बता कर मैंने उनके सामने अपने और आजाद हिन्द फौज के आत्मसमर्पण करने की बात कही। उन्होंने हमें अपना कार्य जारी रखते हुये रोज सवेरे मिलते रहने के लिये कहा। बर्मा डिफेंस आर्मी का भी एक आदमी मुझ से मिला। आजाद हिन्द फौज के बारे में मैंने उसको बताया कि हमारा इरादा रंगून की हिफाजत करने और अंग्रेज सेना के आने पर उसके सामने आत्मसमर्पण कर देने का है। उसने कहा कि हमारा भी यही इरादा है और हमारा अंग्रेज सेना के साथ सम्बन्ध है। मैं उसको हडसन के पास ले गया। उसने उस पर भरोसा न करके लिखित प्रमाण पेश करने को कहा। लेकिन, वह ऐसा कोई प्रमाण-पत्र पेश न कर सका। हडसन के कहने पर हमने अपना काम जारी रखा। रंगून के खाली किये जाने पर भी मित्र हवाई जहाज आकाश में आते और बम बरसाते थे। मैंने हडसन से इसकी शिकायत की। उसने कहा कि क्या किया जाय और कैसे मित्र सेना के कमाण्डर को इसकी सूचना दी जाय? मैंने उनको एक ट्रांसमीटर ला दिया। वे उसका उपयोग न कर सके।

२ मई को मुझे पता चला कि मिंगलाडान के कैम्प कमांडर ने एक अंग्रेज हवाई जहाज को संकेत करके नीचे उतार लिया है। यह स्थान रंगून से १२ मील पर है। मैंने उसको हडसन के पास ले जाने का आदेश दिया। हडसन से मुझे पता चला कि ४ मई को रंगून पर चौतर्फा हमला होने को था। उसको रोकने

के लिये आजाद हिन्द फौज का एक अफसर उस हवाई अफसर के साथ रंगून नदी के मुहाने पर भेजा गया। वहां हवाई बेड़े को संकेत से बताया गया कि रंगून खुला शहर है। हडसन के साथ हुये पत्र-व्यवहार में से अनेक पत्र पेश करते हुए गवाह ने आगे कहा कि ४ मई को लाउडर की कमान में अँग्रेज सेना रंगून में उतरी। ११ मई को उसका पत्र मिलने पर मैं उसके पास गया। अपने सारे कार्य का परिचय देते हुये मैंने कहा कि हम बतौर युद्ध-बन्दी के आत्म-समर्पण करने को तय्यार हैं। उसने शस्त्रास्त्र सौंप कर सैनिकों को अपने कैम्पों में ही रहने का आदेश दिया। दूसरे दिन कर्नल लोकनाथन के साथ फिर मैं उसके पास गया। हमें उसने युद्ध-बन्दी बनाने से इनकार करते हुए कहा कि हिन्दुस्तान लौटने तक उनको आजाद हिन्द फौज में ही रहना होगा। लेकिन, सबको सेण्ट्रल जेल और इनसीन जेल में आ जाना होगा। जेलपर "आई० एन० ए० बैरक" का बोर्ड भी लगा दिया गया था। जेलपर हमारा ही पहरा था। हमें कहा गया था कि भीतर किसी भी प्रकार की रोक-टोक न होगी। कर्नल लोकनाथन ही कमाण्डर रहेंगे और वे ही सारी व्यवस्था करेंगे। बिल्ले भी इसलिये उतारने होंगे कि उनको मित्र-सेना ने मान्यता नहीं दी है और उनको लगाने पर मित्रसेनायें अफसरों का सम्मान न करेंगी। इससे कुछ अशान्ति पैदा होने का भय है। १२ मई तक ऐसा ही क्रम रहा, जब कि आजाद फौज की पहिली टुकड़ी हिन्दुस्तान भेजी गई। हमने लाउडर के कहने पर सब शस्त्रास्त्र इकट्ठे कर दिये और पहरा देना भी बन्द कर दिया।

लाल किले में—सूबेदार शिंगारासिंह, फतेसिंह तथा अन्य अफसर।

दूसरे दिन लाउडर ने मेरे बंगले पर आकर टांगयांगयान में, पहरा जारी रखने को कहा। रंगून से ७८ मील पर यह, हिन्दुस्तानी बस्ती थी और वहां पहरा हटाते ही दो हत्यायें हो गई थीं। हमने वहां मित्रसेनाओं के पहुंचने तक पहरा दिया।

जिरह किये जाने पर कप्तान अरशाद ने कहा कि हमें वेतन जापान की ओर से न दिया जाकर आजाद हिन्द संघ से दिया जाता था। पहिली बार वेतन हमें सितम्बर में दिया गया था। आजाद हिन्द फौज के पहिली बार भंग किये जाने पर जब हमने वेतन लेने से इनकार किया, तब श्री रासबिहारी बोस ने कहा कि यह वे अपने पास से दे रहे हैं। इसके लेने पर उन पर कोई ज़िम्मेवारी नहीं आयेगी। जापानियों का युद्ध-बंदियों के प्रति व्यवहार अच्छा न था। वे अन्तर्राष्ट्रीय नियमों की भी परवा न करते थे। लेकिन, उन्होंने कोई ज़ुल्म या ज्यादती नहीं की। अनेक प्रश्नों के 'नहीं' में उत्तर देते हुये कप्तान अरशाद ने कहा कि आजाद हिन्द फौज में भरती सर्वथा स्वेच्छा से होती थी। कप्तान मोहनसिंह को गिरफ्तार करने का मतलब जी. ओ. सी. के पद से हटाना था। मुझे मालूम नहीं कि उनको सिंगापुर से कहां ले जाया गया। अप्रैल १६४४ में हम मणीपुर पहुंचे थे। मणीपुर में जम्मू-इम्फाल-रोड पर हमारी फौज लड़ रही थी। पलेल पर हम हमला कर रहे थे। उसको हम ले नहीं सके। यहां से हमने पीछे हटना शुरू किया। अधिकृत प्रदेश के सम्बन्ध में रिपोर्टें और हिदायतें बराबर आया-जाया करती थीं।

१ मई १९४५ को रंगून पर अधिकार करने की घोषणा बर्मा डिफेंस आर्मी ने की थी; किन्तु यह ठीक न थी।

कप्तान आर० एम० अरशाद के लम्बे बयान के साथ १२ दिसम्बर को सफाई के गवाहों की गवाहियां समाप्त हो गई। आजाद हिन्द फौज की झांसी की रानी रेजीमेण्ट की कमान डाक्टर लक्ष्मी और दो जापानी अफसरों की गवाहियां सफाई पक्ष की ओर से पेश नहीं की गई। जापानी अफसर हिन्दुस्तान लाये जा चुके थे।

सरकारी वकील ने अपना वक्तव्य देने के लिये अदालत से मोहलत मांगी। सफाई के वकील श्री देसाई ने कहा कि उन को इसमें आपत्ति नहीं है, उनके वक्तव्य के बाद मोहलत दी जाय, तो ठीक रहे। किन्तु वे अपना वक्तव्य मौखिक ही देंगे। उसकी लिखित प्रति वे अदालत में पेश न कर सकेंगे। अदालत १७ दिसम्बर के लिये उठ गई।

(८)

आजादी के लिये युद्ध का अधिकार

१७ और १८ दिसम्बर १९४५ को सफाई में दिया गया श्री भूलाभाई देसाई का लम्बा वक्तव्य हमारे इतिहास का एक अमर पृष्ठ बन गया है। दस घण्टों तक दिया गया धाराबाही मौखिक वक्तव्य श्री देसाई की प्रतिभा, योग्यता और विद्वता का सूचक तो था ही, किन्तु उसमें पराधीन तथा पददलित राष्ट्रों के आजादी के लिये युद्ध करने के अधिकार की भी जबरदस्त बहस की गई थी। इसी से उसका महत्व इतना बढ़ गया है कि उसका उल्लेख चिरकाल तक किया जाता रहेगा।

श्री भूलाभाई देसाई ने कहा, कि सरकार की ओर से इस अदालत के सामने पेश की गई गवाहियों को ऊपरी तौर पर देखने से पता चलता है कि अभियुक्तों पर दो अभियोग लगाये गये हैं। पहिला अभियोग सम्राट् के विरुद्ध युद्ध करने का और दूसरा हत्या करने या उसमें सहयोग देने का है। वस्तुतः प्रमुख

और एकमात्र अभियोग सम्राट् के विरुद्ध युद्ध करने का ही है। हत्या का अभियोग इसी के अन्तर्गत है। किसी पर सम्राट के विरुद्ध युद्ध करने का अभियोग लगाये जाने के बाद उस पर उस युद्ध में गोली दागने के अभियोग का हर बार अलग से उल्लेख करना हास्यास्पद है। उन बातों पर, जो उक्त अभियोग के प्रमाणस्वरूप कही गई हैं, मैं पहिले बहस करूंगा। बाद में यह भी सिद्ध करूंगा कि हत्यासम्बन्धी अभियोग सर्वथा निर्मूल है। जिन चार व्यक्तियों को गोली से उड़ा देने की बात कही गई है, उनके सम्बन्ध में प्राप्त दस्तावेजों से केवल इतना ही पता चलता है कि उन पर मामला चलाया जाकर उन्हें प्राणदण्ड की सजा केवल सुनाई ही गई थी।। मुहम्मद हुसैन की सजा के कार्यान्वित किये जाने के सम्बंध में कोई प्रमाण पेश नहीं किया गया है। इस सिलसिले में, उपस्थित किये गये प्रमाणों से मैं यह सिद्ध कर दूंगा कि चार व्यक्तियों में से केवल एक ही को प्राणदण्ड की सजा सुनाई गई थी, लेकिन वह भी कभी कार्यान्वित नहीं हुई। यही इस अभियोग का वास्तविक स्वरूप है, जिसका अदालत के सामने खाका खींचना मेरे लिये आवश्यक है।

सब घटनाओं पर विस्तार से बहस करने के पहिले मैं एक-दो बातों की ओर अदालत का ध्यान खींचना जरूरी समझता हूँ। फौजी अदालत के सामने साधारण तौर पर पेश होने वाले मामलों से यह मामला असाधारण कोटि का है। उसके सामने साधारणतया व्यक्तिगत रूप से कर्त्तव्य पालन करने में त्रुटि करने अथवा अनुशासन भंग करने के

अपराधों की ही सुनवाई होती है। मैं यह साहस के साथ कहता हूँ और सबूत मेरे इस कथन का समर्थन करता है। यह केवल तीन व्यक्तियों का मामला नहीं है, जिन्होंने सम्राट के विरुद्ध युद्ध किया है। सरकारी गवाहियों से ही यह प्रकट है कि अदालत में जिन तीन व्यक्तियों पर मुकदमा चल रहा है, वे एक बाकायदा संगठित सेना के, जिसने सम्राट के विरुद्ध युद्ध छेड़ा था, सदस्य थे। अतः इस मामले के रूप में न केवल कुछ व्यक्तियों के कार्यकलाप का, अपितु समूची आजाद हिंद सेना के विधान और मानमर्यादा का निर्णय होने जा रहा है। साथ ही आज अदालत के सामने यह प्रश्न भी उपस्थित है कि एक गुलाम कौम को अपनी मुक्ति के लिये युद्ध लड़ने का अधिकार है कि नहीं ? मैं अन्तराष्ट्रीय विधान विशेषज्ञों के सर्वमान्य विचारों को पेश करके यह सिद्ध करूंगा कि कोई भी राष्ट्र अथवा उस राष्ट्र का कोई भाग ऐसी अवस्था में पहुंच जाता है, जब उसको अपनी स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए युद्ध करने का पूरा अधिकार हो जाता है। इस मामले के सम्बन्ध में एक और बात भी उल्लेखनीय है, जिस पर मैं जोर देना चाहता हूँ। इसके लिए स्वभावतः काफी दिलचस्पी पैदा हो गई है। सार्वजनिक तथा सरकारी दृष्टिकोणों से भी अनेक बड़े बड़े लोग भी, जिनमें भारत के वायसराय से लेकर अन्य अधिकारी भी सम्मिलित हैं, इस मामले के पक्ष और विपक्ष में राय जाहिर कर चुके हैं।

इस मामले के सम्बन्ध में अब तक जो बातें मालूम हो सकी हैं, उनको सिलसिलेवार थोड़े में अदालत के सामने

मैं उपस्थित करना चाहता हूं। बाद में उनपर मैं कानूनी दृष्टि से बहस करूंगा। अन्यथा उपलब्ध प्रमाणों को, जो लगभग चार सौ सफों में भरे पड़े हैं, यहां विस्तार के साथ उद्धृत कर मैं अदालत को व्यर्थ कष्ट देना नहीं चाहता। मैं केवल महत्वपूर्ण दस्तावेजों को ही पेश करूंगा। दिसम्बर १६४१ में जापान ने ब्रिटेन और अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की थी। इसके बाद कुछ ऐसी घटनायें घटीं, जो इस अदालत के सामने विवाद का विषय बन गई हैं। १५ फरवरी १६४२ को ब्रिटिश फौजों ने सिंगापुर में जापानियों के हाथों में आत्मसमर्पण कर दिया। इसके दो दिन बाद १७ फरवरी को फरेर पार्क में, जो घटना घटी, वह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। बाद की घटनाओं में आजाद हिन्द फौज की स्थापना का महत्त्व बहुत अधिक है, जो १६४२ के सितम्बर मास में स्थापित की हुई थी। दिसम्बर १६४२ में यह भंग करदी गई और उसके नेता कप्तान मोहनसिंह गिरफ्तार कर लिये गये। इसके बाद की घटनाओं में दुबारा आजाद हिन्द फौज की स्थापना के लिये किये गये प्रयत्न विशेष महत्व रखते हैं। २३ जुलाई १६४३ को श्री सुभाषचन्द्र बोस सिंगापुर पहुंच गये और उन्होंने आजाद हिन्द फौज की कमान अपने हाथों में लेली। इसी समय यहां एक वृहत्तर पूर्वी एशिया की परिषद् हुई, जिसमें सुदूर पूर्वीय देशों के विभिन्न स्थानों से हिन्दुस्तानी आजाद हिन्द संघ (इण्डिपेण्डेन्स लीग) के प्रतिनिधि होकर आये थे। इस परिषद् में स्वीकृत प्रस्तावों में से एक यह था कि आजाद हिन्द की एक अस्थायी सरकार स्थापित की जाय।

२१ अक्टूबर १६४३ को अस्थायी आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की घोषणा की गई, जिसको मैं इस मामले की कार्रवाई में, सुविधा की दृष्टि से, "अस्थायी सरकार" कहूंगा। अस्थायी सरकार की स्थापना के बाद ही उसके मन्त्रियों ने वफादारी की शपथ ली। इसी सरकार ने ब्रिटेन और अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। आजाद हिन्द फौज ने इसी सरकार के आधीन अपना कार्य आरम्भ किया। बाद की घटनाओं में तीन सब से महत्त्व की हैं। अस्थायी सरकार का सिंगापुर से रंगून को प्रस्थान पहिली घटना है। बर्मा से भारत की सीमा अर्थात् कोहिमा तक आजाद हिन्द फौज का कूच करना, फिर पीछे हटना तथा ब्रिटिश सेनाओं का रंगून पर कब्जा हो जाने पर उत्पन्न हुई स्थिति शेष घटनायें हैं, जो अत्यन्त महत्त्व की हैं। प्रस्तुत मामले के सम्बन्ध में यही चन्द निर्विवाद घटनायें हैं, जो इस अदालत के लिये विचारणीय हैं। इन सब घटनाओं का सर्वप्रथम निष्कर्ष, जिसे स्वीकार करने के लिये मैं अदालत से अनुरोध करता हूं, यह निकलता है कि अस्थायी आजाद हिन्द सरकार की स्थापना और घोषणा विधिवत् हुई थी। मेरे मत से इस सम्बन्ध में किसी प्रकार के सन्देह की गुंजाईश नहीं रह जाती। इस विषय पर जितनी बार जिरह हुई है, उसमें इसके विरुद्ध स्पष्ट रूप से कोई भी संकेत नहीं मिला। अदालत से मेरा अनुरोध है कि इस पर विचार करते समय अस्थायी सरकार के घोषणापत्र एवं अन्य प्रमाणों को अवश्य याद रखा जाय। इसी लिये मैं सब से पहिले इस घोषणा-पत्र की ओर, जिसकी

मूल प्रति यहां उपस्थित की गई है, अदालत का ध्यान खीचूंगा।

इसके बाद श्री भूलाभाई देसाई ने आजाद हिन्द सरकार के घोषणा-पत्र की निम्न अंश पढ़ कर सुनाये—"सन् १८५७ में अंग्रेजों ने भारतीय जनता को बलपूर्वक निःशस्त्र कर आतंक तथा क्रूरता से उनको गुलामी में जकड़ दिया। कुछ दिनों तक भारतीय जनता दबी पड़ी रही। सन् १८८५ में कांग्रेस की स्थापना होने के बाद से लेकर प्रथम महायुद्ध के दिनों तक भारतीयों ने प्रचार कार्य, ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार, आतंकवाद, तोड़फोड़ तथा सशस्त्र क्रांति से अपनी खोई हुई स्वाधीनता की प्राप्ति का प्रयत्न किया। इन सभी दिशाओं में वह असफल रही। अंत में सन् १९२० में, जब कि बार बार की अपनी असफलता से असंतुष्ट भारतीय जनता स्वाधीनता प्राप्ति के नये साधनों की खोज में व्यस्त थी, महात्मा गांधी असहयोग और सविनय अवज्ञा आन्दोलन का नया अस्त्र लेकर आगे बढ़े। अंत में चालू महायुद्ध के श्रीगणेश का अवसर उपस्थित होने के साथ ही साथ भारतीय स्वाधीनता की प्राप्ति के निमित्त आन्दोलन छेड़ने के लिये आवश्यक भूमिका तैयार हो गई। इस युद्ध काल में जर्मनी अपने मित्रों की मदद से हमारे शत्रु पर कठोर प्रहार करता रहा है और इससे भी कठोरतम प्रहार पूर्वी एशिया स्थित जापान हमारे शत्रु पर अपने मित्रों की मदद से करता रहा है। अवश्य ही भारतीयों को अपनी राष्ट्रीय मुक्ति के लिये यह स्वर्ण-अवसर प्रतीत हो रहा है। आधुनिक इतिहास में

आज पहली ही बार प्रवासी भारतीयों में भी राजनीतिक जागृति पैदा हुई और वे सब एक संगठन-सूत्र में बँध गये। भारत स्थिति अपने देशबान्धवों की भावनाओं के साथ केवल उनकी भावना में एक रूप हो गई हैं, अपितु वे उन्हीं के पद चिन्हों का अनुसरण कर स्वाधीनता-प्राप्ति के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। खास कर पूर्वी एशिया में २० लाख से अधिक भारतीय एक सुदृढ़ संगठन सूत्र में बंध गये हैं।"

यहाँ पर कुछ रुककर श्री मूलाभाई ने कहा कि "इस उद्धरण को पेश करने का यह अभिप्राय है कि यह सरकार ऐसी सरकार नहीं थी, जिसे आप अथवा मेरा विरोधी पक्ष विद्रोहियों का दल अथवा असफल व्यक्तियों का झुन्ड कह सके।" इसके बाद श्री देसाई ने घोषणा-पत्र में से फिर पढ़ना शुरू किया कि "ब्रिटिश सरकार ने कपट नीति से भारतीय जनता को तबाह कर और लूट खसोट से उन्हें भूखे मारकर अपने प्रति भारतीय जनता की श्रद्धा को खो दिया है। अब उसका अस्तित्व अनिश्चित सा बन गया है। ऐसी सरकार तथा उसके साथियों की भारतभूमि से जड़ उखाड़ फेंकने के निमित्त आन्दोलन छेड़ना एव उसका संचालन करना अस्थायी सरकार का कर्त्तव्य होगा। आजाद हिन्द की ऐसी स्थायी सरकार की, जो भारतीय जनमत का प्रतिनिधित्व करती हो तथा उसकी विश्वासपात्र हो, स्थापना करना इस अस्थायी सरकार का दूसरा कर्त्तव्य होगा। ब्रिटिश सरकार तथा उसके मित्रों का तख्त उलट देने के बाद और जब तक भारत में स्थायी आजाद हिन्द

सरकार की स्थापना नहीं हो जाती, यह अस्थायी सरकार भारतीय जनता को विश्वास में लेकर देश का शासनभार संभालती रहेगी। यह अस्थायी सरकार प्रत्येक हिन्दुस्तानी के प्रति वफादार रहेगी और इस सरकार के प्रति वफादार रहना प्रत्येक हिन्दुस्तानी का फर्ज होगा। भारत के सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्र्य, समान अधिकार तथा एक-सा सुअवसर प्रदान करने का वह जिम्मा लेती है। समूचे देश के सुख और समृद्धि के लिये, बिना किसी भेदभाव के दृढ़ता के साथ प्रयत्नशील रहने की हम घोषणा करते हैं। भगवान् के नाम पर, हमारे उन पूर्वजों के नाम पर, जिन्होंने एक-राष्ट्रीयता के सूत्र में हमें बांध दिया है तथा उन शहीदों के नाम पर जो वीरता और आत्मोत्सर्ग की परम्परा की वसीयत हमारे लिये छोड़ गये हैं; हम भारतीय जनता से अपील करते हैं कि वह हमारे झण्डे के नीचे एकत्रित होकर भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के लिये लड़ें।"

इस घोषणा-पत्र पर अस्थायी सरकार के मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के हस्ताक्षर हैं। अस्थायी सरकार की स्थापना का उद्देश्य क्या था तथा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये वह किन तरीकों से काम लेना चाहती थी, यह बताने के लिये ही मैं इस दस्तावेज की ओर अदालत का ध्यान आकर्षित कर रहा हूं। अदालत के सामने उपस्थित मामले से, इस बात का कि यह सरकार अपने उद्देश्य की प्राप्ति में विफल रही, कोई सम्बन्ध नहीं है। दूसरी बात यह सिद्ध हुई है कि आजाद हिन्द सरकार एक संगठित सरकार थी। इस बात को प्रमाणित करने के लिये अधिक वहम

की जरूरत नहीं है। इस अस्थायी सरकार के मन्त्रियों के सुपुर्द जो विभिन्न विभाग थे तथा मेरे द्वारा अभी अभी उद्धृत दस्तावेज के अंत में जो अंकित हैं, उनका उल्लेख गवाहों ने अदालत के सामने दिये गये अपने बयान में किया है। गवाहों द्वारा यह भी बताया गया है कि आजाद हिन्द संघ अस्थायी सरकार की शासन-परिषद् के नाते कार्य करती थी तथा उसने उन भारतीयों की रक्षा का, जो उसके प्रति वफादार रहे, युद्धजन्य परिस्थितियों में भी यथासम्भव प्रयत्न किया। गवाही में जो आंकड़े दिए गए हैं, उनसे यह भी सिद्ध होता है कि जून १९४४ में केवल मलाया में २३००० व्यक्तियों ने इस अस्थायी सरकार के प्रति वफादार रहने की शपथ ली थी। इस संख्या को उद्धृत करने का यही अभिप्राय है कि यह अस्थायी सरकार विद्रोहियों का दल अथवा असफल व्यक्तियों का झुण्ड नहीं था, जैसा कि सम्भवतः आप या मेरे विरोधी उपहासपूर्वक समझ बैठेंगे। ऐसे सुझाव को मैं झूठा साबित कर देना चाहता हूं। २० लाख व्यक्ति उसके प्रति आस्था रखते थे, जिनमें से २ लाख ३० हजार व्यक्तियों ने केवल मलाया में उसके प्रति वफादार रहने की शपथ ली थी।

तीसरी बात, जो अदालत के सामने सिद्ध हुई है, वह यह है कि अस्थायी सरकार को धुरी राष्ट्रों की मान्यता मिल गई थी। मैं यह बात संक्षेप में केवल इस लिये कह रहा हूं कि कानून और लक्ष्य की दृष्टि से यह अनावश्यक है कि मान्यता विशेष प्रकार की अथवा विशिष्ट संख्या तक की सरकारों द्वारा

ही मिलनी चाहिए। मान्यता या स्वीकृति स्वयमेव एकमात्र प्रमाण है, जिससे अतिरिक्त अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं रह जाती। किसी भी मान्यता प्राप्त सरकार को अपने वांछित उद्देश्य के लिए युद्ध-घोषणा करने का अधिकार है और युद्ध-घोषणा करने का अधिकार रखने वाली सरकार की सेना युद्ध-विषयक अन्तर्राष्ट्रीय विधान से बंध जाती हैं।

जहाँ तक अस्थायी आजाद हिन्द सरकार को जर्मनी और इटली की स्वीकृति प्राप्त होने की बात है, जिसका कोई सवाल ही नहीं उठता और न उठाया ही गया है, किन्तु पूर्वी एशिया की उन दिनों की कुछ सरकारों के सम्बन्ध में यह आक्षेप किया गया है कि वे जापान के प्रभुत्व में होने के कारण उससे प्रभावित थीं। कम से कम मैं इस बात की सचाई को स्वीकार करने में असमर्थ हूं। यदि हम ऐसा समझ कर चलें कि जापान के पास साम्राज्य होता, यानी उसके द्वारा विजित प्रदेश स्वाधीन न होकर उसी की प्रभुता में रहते, तो भी आजाद हिन्द सरकार को उनसे प्राप्त होने वाली मान्यता के महत्व में कोई फर्क नहीं पड़ता। फिर भी यह प्रश्न बाकी रह जाता है कि क्या केवल किसी सरकार को मान्यता मिल जाने से वह बाकायदा ऐसा राज्य बन जाती है, जो अपनी प्रजा की स्वाधीनता प्राप्ति के लिये युद्ध-घोषणा एवं प्रत्यक्ष युद्ध करने की अधिकारी हो जाती है। अतः मुख्य प्रश्न है किसी भी सरकार का बाकायदा 'राज्य' की स्थिति को पहुंचने का। इस प्रकार के राज्य की युद्ध-घोषणा ही उसके अस्तित्वका स्वयंसिद्ध

प्रमाण है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि किन्हीं दो स्वतन्त्र राज्यों को युद्ध की घोषणा करने का अधिकार है तथा युद्ध-संचालन की दृष्टि से उनके द्वारा किये गये किसी भी कार्य का औचित्य स्वयं युद्ध से ही सिद्ध होता है। इस पर यह पूछा जा सकता है कि एशिया, जर्मनी तथा अन्यान्य स्थानों पर युद्ध अपराध के मुकदमे क्यों चलाये जा रहे हैं? वास्तव में इन मुकदमों से इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि उचित युद्ध-संचालन के लिये किये गये कार्य अपराध की श्रेणी में नहीं आते। सभ्य संसार के युद्ध-नियमों के अनुसार युद्ध का संचालन करने के साथ ही कुछ खास नियमों के विरुद्ध कार्य करते समय, जिन्हें अब "युद्ध-अपराध" कहने की प्रथा चल पड़ी है, कुछ व्यक्ति पकड़े गये हैं। केवल इस प्रकार के युद्ध-अपराध के लिये ही आप मुकदमे चला सकते हैं और वास्तव में चला भी रहे हैं। इससे यह भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि सभ्य युद्ध-संचालन के कार्यों के बारे में, जिनमें परमाणु बम का प्रयोग भी सम्मिलित है, हस्तक्षेप करने का किसी म्यूनिसिपल ट्रिब्युनल को अधिकार नहीं है।

श्री भूलाभाई ने आगे कहा कि चौथी बात जो मैं अदालत के सामने पेश करना चाहता हूँ और जो सप्रमाण सिद्ध हो चुकी है, वह यह है कि अस्थायी सरकार के पास सुसंगठित सेना थी, जिसके अपने विशेष पदक तथा अन्य चिन्ह थे। इसके संचालन के लिये भी बाकायदा अफसर नियुक्त किये गये थे। सबूत पक्ष ने इन बातों को प्रमाणित कर मेरे समय की बचत की है।

अनेकानेक दस्तावेजों से उसने यह सिद्ध कर दिया है कि आजाद हिन्द फौज बाकायदा संगठित की गई थी। अव्वल तो उसका संचालन आजाद हिन्द फौज के कानून से होता था। सरकारी वकील के ज़िरह के समय किये गये सवालों से जो बात मैं समझ सका हूँ, वह यह है कि इस फौज के कानून के अनुसार कोड़े सम्बन्धी कुछ सजाओं में उन्हें आपत्ति है। ऐसा सोचते समय वह यह भूल जाते हैं कि ब्रिटिश भारत में इण्डियन आर्मी एक्ट भी इसी प्रकार अमल में लाया जाता है। यह सही है कि लैफ्टिनेण्ट नाग ने अदालत में कहा था कि कोड़ों की सजा के बारे में जो विधान इण्डियन आर्मी एक्ट के अन्तर्गत है, उसके अतिरिक्त भी कुछ विधान आजाद हिन्द फौज के लिये बना लिये गये थे। कुछ ही दिन पहिले इण्डियन आर्मी एक्ट के अन्तर्गत शारीरिक सजा की ४५ वीं धारा में जो अंश जोड़ दिया गया है, उसको विरोधी पक्ष सम्भवतः भूल गया है। मैं १६११ के इण्डियन आर्मी एक्ट की ४५ धारा का वह पढ़कर सुनाता हूं। वह इस प्रकार है कि (१) "ऐसा कोई भी व्यक्ति या सेनाधिकारी, जिसको यह एक्ट लागू होता है; ५ वीं सेना में काम करते समय अपराधी पाया गया, (बी) किसी अन्य मौके पर धारा संख्या ३१ के "डी" नियम को भंग करने का अपराधी ठहराया गया अथवा (सी) किसी समय अन्य प्रकार से ब्रिटिश भारत में इस कानून के अनुसार दोषी पाया गया हो, तो फौजी अदालत उसे कोड़ों की सेजा दे सकेगी। इस धारा से

फौजी अदालत किसी भी अपराधी को कानूनन अधिक से अधिक तीस कोड़ो की सजा दे सकती है।

यह सही है कि युद्ध-काल में यह धारा अमल में नहीं लाई गई, किन्तु ऐसा समझना कि भारतीय कानून व्यवस्था में इस प्रकार की धारा कभी थी ही नहीं, भारी भूल है। भारत रक्षा विधान और उससे सम्बन्धित आर्डिनेन्सों में तो भारतीय सेना के अपराधी व्यक्ति को कोड़ों की सजा देने का निश्चित रूप से का उल्लेख किया गया है। १६४३ के ३७ वें आर्डिनेन्स से इण्डियन आर्मी एक्ट की इस त्रुटि को दूर किया गया है। तात्पर्य यही है कि यदि आजाद हिन्द फौज के अनुसार समय समय पर दी गई शारीरिक सजायें आपकी दृष्टि में अवैध है, तो इस अवधि में इण्डियन आर्मी एक्ट के अंतर्गत दी गई इसी प्रकार की सजायें भी अवैध होनी चाहिये। वास्तव में बात ऐसी नहीं है।

एक बात और जो असंदिग्ध रूप से सिद्ध हुई है, वह यह है कि अस्थायी आजाद हिन्द सरकार की घोषणा का मुख्य उद्देश्य भारत की स्वाधीनता प्राप्त करना था। बर्मा तथा मलाया के भारतीयों के जान-माल एवं मान-सम्मान की युद्धजन्य संकटकाल में यथासम्भव रक्षा करना उसका दूसरा उद्देश्य था, जो कुछ अंशों में गौण है।

पांचवीं बात जो स्वीकार नहीं की गई है, किन्तु जो अदालत में सप्रमाण उपस्थित की गई है, वह यह है कि जापान सरकार ने आजाद हिन्द सरकार को अण्डमान और निकोबार द्वीप प्रदान किये थे, उसने जियावाड़ी प्रदेश के लगभग ५० वर्गमील क्षेत्र

पर कब्जा कर लिया था और उसने चार से छः मास तक मणीपुर और विष्णुपुर के प्रदेशों पर शासन किया था। अण्डमान और निकोबार के सम्बन्ध में सबूत पक्ष के गवाह लेफ्टिनेंट नाग ने निश्चित रूप से बताया है कि जापान सरकार ने दोनों द्वीप आजाद हिंद सरकार को दे दिये थे। जापान की सरकार ने बाकायदा इसकी घोषणा की थी, जो एक दस्तावेज के रूप में अदालत में सिद्ध हो चुका है। इस दस्तावेज में जनरल तोजो का वह वक्तव्य है, जिसमें कहा गया है कि जापान सरकार आजाद हिंद सरकार को अण्डमान एवं निकोबार के द्वीपों को प्रदान करना चाहता है। यह घटना ५ नवम्बर १६४३ को हुई थी।

भारत की स्वाधीनता के सम्बन्ध में जापान के प्रधान मंत्री जनरल तोजो को टोकियो में हुए वृहत्तर पूर्वी एशियाई सम्मेलन में हुए भाषण को उद्धृत करके श्री देसाई ने कहा कि इस घोषणा के अनुसार आजाद हिन्द सरकार की ओर से नियुक्त चीफ कमिश्नर के हाथों में जापानी अधिकारियों ने दोनों द्वीप समारोहपूर्वक सौंप दिए थे। उनके शासन के वास्तविक स्वरूप और विस्तार के विषय में सबूत और बयान पक्ष में थोड़ा मतभेद है। महत्व की बात उनका आजाद हिन्द सरकार के हाथों में दिया जाना है, न कि उस परिस्थिति में वहां की गई शासन-व्यवस्था। उदाहरण के लिए किसी घर की बिक्री और खरीद की बात लीजिए। किसी घर के बिक जाने पर भी उस पर विक्रेता का प्रत्यक्ष अधिकार होने में कुछ समय लग सकता है। कर्नल

अदालत का एक दृश्य—सफाई के वकील सर दिलीपसिंह, सर तेजबहादुर सप्रू, पं० नेहरू, सर बख्शी टेकचन्द, जस्टिस अच्छरूराम ।

लोकनाथन ने जिरह के समय यह साफ तौर पर बार-बार स्वीकार किया है कि इनकी शासन-व्यवस्था जापानियों ने पूरी तरह अस्थायी सरकार को नहीं दी थी। यह सिद्ध हो चुका है कि उनका शासन अपने हाथों में लेने के लिए ही कर्नल लोकनाथन वहां पहुंचे थे। यह सही है कि वे वहां की सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था अपने हाथ में न ले सके। वे केवल शिक्षा और न्याय-विभाग का ही काम अपने हाथों में ले सके; किन्तु इनके सम्बन्ध में इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात है उनका नया नामकरण, 'शहीद' और 'स्वराज्य' शब्दों से किया गया था।

अब मैं जियावाड़ी के प्रश्न पर बहस करूंगा। जियावाड़ी ५० वर्गमील का एक प्रदेश है और वहां की आबादी १५००० है। वहां चीनी का एक मिल था। वहां की सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था आजाद हिन्द सरकार के कार्यकर्त्ता करते थे, जो आजाद हिन्द दल के सदस्य थे। आजाद हिन्द दल ट्रेण्ड व्यक्तियों का एक ऐसा संगठन था, जिसे आजाद हिन्द सेना के अधिकार में आने वाला प्रदेश शासन-व्यवस्था के हेतु सौंप दिया जाता था। शिवसिंह तथा अरशाद ने जो बयान दिये हैं, उनकी सचाई की जांच की आवश्यकता उनकी जिरह के समय सरकारी वकील को प्रतीत नहीं हुई।

अदालत के समक्ष यह भी सिद्ध हो गया है क आजाद हिन्द फौज के बर्मा की सीमा पार कर भारत पहुचने पर एक घोषणा पत्री गई थी, जिसके दो हिस्से थे। एक पर आजाद हिन्द फौज के अध्यक्ष के तथा दूसरे पर दक्षिण-पूर्वी कमान के

आज्ञानुसार कावाबे के हस्ताक्षर थे। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जापानी सेनाओं के हस्तगत किया गया भारत का प्रदेश शासन-व्यवस्था के लिए आजाद हिन्द फौज को सौंप दिया जायगा। जिस समय जापानी सेनायें और आजाद हिन्द फौज मणीपुर और विष्णुपुर के हल्कों में लड़ रही थीं, उस समय १५००० वर्ग मील के इन स्थानों पर आजाद हिन्द सरकार के आजाद हिन्द दल का ही शासन था।

आजाद हिन्द सरकार के अस्तित्व के प्रश्न पर विचार करते समय उसकी साधन-सम्पत्ति के सम्बन्ध में भी विचार करना उचित होगा। अदालत के समक्ष इस बात के प्रमाण दिए जा चुके हैं कि इस अस्थायी सरकार को २० करोड़ रुपये दान से प्राप्त हुए थे और इस रकम से इस सरकार और उसकी फौज का खर्च चलाया जाता था। दीनानाथ ने, जो आजाद हिन्द बैंक के डाइरेक्टरों में से थे, इस सम्बन्ध में अदालत के सामने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि बर्मा और मलाया के बीच, उस अवधि में २० करोड़ रुपये की सम्पत्ति आजाद हिन्द फौज के अधिकार में आ गई थी। जियावाड़ी की आय इसके अलावा थी। बर्मा तथा मलाया पर अंग्रेजों का अधिकार फिर से कायम होने पर ये सभी दस्तावेज, जो अस्थायी सरकार के अधिकार में थे, पूर्णतया सुरक्षित पाए गए। अवश्य ही यह आश्चर्यजनक है। सफाई पक्ष की ओर से अण्डमान और निकोबार की तत्कालीन शासन-व्यवस्थासम्बन्धी जो मासिक रिपोर्ट पेश की गई हैं, उनसे भी इस बात का पता चलता है। मैं जोर देकर कहूंगा कि

आजाद हिन्द सरकार वस्तुतः एक सुसंगठित सरकार थी। सरकारी वकील केवल आधे ही दस्तावेज अदालत के सामने पेश कर सके हैं। इन पेश किए गए प्रमाणों से ज्ञात होता है कि रंगून के पतन के बाद यह बैंक बंद कर दिया गया और उसकी जायदाद, जो ३५ लाख रुपये की थी, ब्रिटिश-अधिकार में चली गई। मेरे समस्त कथन का यही तात्पर्य है कि आजाद हिन्द सरकार के पास अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पर्याप्त साधन-सम्पत्ति थी।

इसके बाद श्री भूलाभाई देसाई ने सुप्रसिद्ध टिकट-संग्राहक डगलस आर्मस्ट्रांग द्वारा सम्पादित एवं लन्दन से प्रकाशित होने वाले 'स्टैम्प कलेक्टिंग' नामक साप्ताहिक के १० नवम्बर १९४५ अंक के पृष्ठ १३६ कालम १ में प्रकाशित एक लेख को प्रमाणस्वरूप उद्धृत करना चाहा। सरकारी वकील के आपत्ति करने पर भी श्री देसाई ने इसको पढ़कर बताया कि आजाद हिन्द सरकार ने अपने टिकिट और मोहरें भी तय्यार कर ली थी। इस लेख का शीर्षक था—"इम्फाल के टिकिट जो कभी जारी नहीं हुए।"

श्री भूलाभाई देसाई ने आगे कहा कि सबूतों से ज्ञात होता है कि अस्थायी आजाद हिन्द सरकार का अपना सिविल तथा सैनिक गजट था। इन तथ्यों के आधार पर जो कानूनी प्रश्न मैं उपस्थित करना चाहता हूं, वह यह है कि जिन परिस्थितियों में आजाद हिन्द सरकार की स्थापना हुई तथा जिन में वह काम कर रही थी, उनमें उसे युद्ध करने का पूरा अधिकार था और भारत की मुक्ति के लिये ही उसने युद्ध किया था। अदालत के समक्ष

पेश करने को नहीं कह सकते, जैसी कि साधारण नागरिक अपराधों के सम्बन्ध में पेश करने को कहा जाता है। श्री देसाई ने फिर ह्विटन के कथन को उद्धृत किया कि "राष्ट्र-संघ तक कुछ प्रसंगोंपर युद्ध के वैधानिक होने की बात स्वीकार करता रहा है। अवश्य ही आक्रमणात्मक लड़ाई के प्रति वह स्पष्ट रूप से विरोध प्रकट कर चुका है। इसी लिये १६८०-८१ में १४ वें लुई द्वारा स्टैसबर्ग पर तथा १६१३ में इटली द्वारा कोर्फू पर किये गये सशस्त्र आक्रमण को 'युद्ध' नहीं कहा जा सकता। उक्त आक्रमणों के शिकार होने वाले राष्ट्रों ने कोई युद्ध-घोषणा नहीं की थी।" इसी प्रकार के कई अन्य ऐतिहासिक उदाहरण ह्विटन ने दिये हैं। तात्पर्य यह है कि आजाद हिन्द सरकार द्वारा की गयी युद्ध घोषणा पूर्णतया वैधानिक थी। दूसरी बात यह कि युद्धविषयक अन्तर्राष्ट्रीय विधान को आप अपरिवर्तनशील नहीं मान सकते। यह तो ऐसा विधान है कि जिसका मानव-संस्कृति के विकास के साथ बराबर विकास होता रहा है। इस समय अन्तर्राष्ट्रीय विधान उस अवस्थापर पहुंच गया है कि उसके अनुसार यदि सम्पूर्ण संसार के लिये स्वाधीनता और प्रजातंत्र का कोई अर्थ है, तो विदेशी शासन से छुटकारा पाने के हेतु किया गया कोई भी युद्ध पूर्णतया न्यायोचित हो जाता है। यदि यह जान लिया जाय, कि भारतीय सैनिक जर्मनी, इटली और जापान से ब्रिटेन की स्वाधीनता की रक्षा करने के लिये तो लड़ें, किन्तु आजाद हिन्द सरकार दूसरे देशों की, जिनमें इंग्लैंड भी सम्मिलित है, गुलामी से छुटकारा पाने के लिए न लड़े; तो यह

न्याय का गला घोंटना ही होगा। इसी कारण हम कहते हैं कि इस विशिष्ट युद्ध का औचित्य सिद्ध करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। इसी लिये आप इस मामले के अभियुक्तों से सफाई पेश करने को कह नही सकते। हम यह सिद्ध कर सकते हैं कि अभियुक्तों ने सभ्य युद्धसंचालनसम्बन्धी नियमों का कहीं भी उलंघन नहीं किया है। मैं इसी एक बात पर फिर जोर देना चाहता हूं। इसी लिये मैं यह कहता हूं कि इस अदालत के सामने पेश किये गये मामले का स्वरूप वस्तुतः बहुत ही संकुचित है।

किसी जमाने में यह जोर्ण विचारधारा प्रचलित थी कि केवल स्वतन्त्र या बड़े राष्ट्र को ही युद्ध-घोषणा करने का अधिकार है। इससे गुलाम जातियों की स्वतन्त्रता का प्रश्न तो ज्यों का त्यों बना रहता है। स्वाधीनता के लिये ये जातियां कभी भी युद्ध-घोषणा कर नहीं सकतीं। इसीलिये आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय विधान में ऐसी गुलाम जातियों के संगठित होने तथा सैन्य-संगठन द्वारा युद्ध करने का अधिकार मान लिया गया है। इस युद्ध के समय ऐसी सेना द्वारा किये गये कार्यों के लिये उक्त सेना के किसी भी सदस्य पर व्यक्तिगत रूप से म्युनिसिपल कानून के अनुसार मामला चलाया नहीं जा सकता। यह बात अब मान-सी ली गयी है कि युद्ध-रत दोनों दलों का स्वतन्त्र होना या स्वतन्त्र राष्ट्र अथवा बड़ा राष्ट्र मान लिया जाना खास आवश्यक नहीं है। किसी स्वतन्त्र राष्ट्र और उसके अधीन रहने वाली जाति के बीच भी 'युद्ध' छिड़ सकता है। बोअर-युद्ध

के बाद से उसके द्वारा किये जाने वाले समस्त कार्यों का स्वरूप किसी स्वतन्त्र राष्ट्र के कार्यों के समान ही माना जायगा।

अन्तर्राष्ट्रीय विधान की विभिन्न पुस्तकों के उदाहरण देते हुए देसाई ने अन्त में 'ब्रिटिश ईयर बुक आफ इण्टरनेशनल ला' के सन् १९३७ के संस्करण के १८ वें पृष्ठ के एक अंश का हवाला देते हुए कहा कि "सच बात तो यह है कि यदि आजाद हिन्द फौज अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सफल हो गई होती, तो अन्तर्राष्ट्रीय विधान के अनुसार उसे एक सफल क्रान्ति का नाम दिया जाता तथा उसके द्वारा स्थापित सरकार को कानून-सम्मत सरकार मान लिया जाता। सफल क्रान्ति के पूर्व तो युद्ध की ही स्थिति होती है और यही मेरे मामले से सम्बन्ध रखने वाली महत्वपूर्ण बात है। यदि मैं यह सिद्ध कर सकूं कि आजाद हिन्द फौज युद्ध कर रही थी, तो फिर अन्तर्राष्ट्रीय विधान के अनुसार उसे वे ही अधिकार प्राप्त हो जाते हैं, जो किसी भी स्वतंत्र देश की सेना को प्राप्त होते हैं। १८६० में दक्षिण इटली में इटालियन देशभक्त गैरिबाल्डी द्वारा इटली की तत्कालीन सरकार के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया गया था। ग्रेट ब्रिटेन को इस मामले में तटस्थता की नीति का अवलम्बन करना था। इस सम्बन्ध में इंग्लैंड की तत्कालीन सम्राज्ञी को उसके सलाहकार सर जान हार्डिंग द्वारा दी गई सलाह की ओर श्री देसाई ने अदालत का ध्यान आकर्षित किया। सर जान की राय में इटली के राजा के विरुद्ध गैरिबाल्डी की युद्ध-घोषणा सर्वथा नियमसंगत थी तथा उसको या उसके सेनाधिकारियों को डाकू नहीं कहा जा सकता था। वे बाकायदे

युद्ध कर रहे थे तथा ब्रिटिश नौसैनिक अधिकारियों ने उन्हें स्वीकृति या मान्यता प्रदान की थी।

स्पैनिश अमेरिकन उपनिवेशों द्वारा किये गये विद्रोहों का उल्लेख करते हुए श्री देसाई ने कहा कि "अपनी स्वाधीनता-प्राप्ति के निमित्त अपने शासकों के विरुद्ध विद्रोह करने सम्बन्धी औपनिवेशिक राष्ट्रों के अधिकारों को ब्रिटिश सरकार भी स्वीकृति प्रदान कर चुकी है।" १६३७ में हुए स्पेन के गृहयुद्ध के सम्बन्ध में १४ अप्रैल १६३७ को कामन्स सभा में इंगलैण्ड के तत्कालीन विदेश-सचिव मि० एन्थोनी ईडन तथा राइट आनरेबल मि० चर्चिल द्वारा स्पेन के सरकारविरोधी दल अर्थात् प्रजातंत्र-वादी दल के समर्थन में दिये गये भाषणों का महत्वपूर्ण अंश पढ़ कर सुनाने के बाद श्री देसाई ने नियन्त्रित, किन्तु स्पष्ट भाषा में बोलते हुए एक गुलाम कौम के आज़ादी के लिये युद्ध करने के अधिकार का प्रश्न। उपस्थित किया आपने कहा कि वफादारी का प्रश्न यहां लागू नहीं होता। कानूनी वफादारी चिरकाल तक नहीं रखी जा सकती। यदि ऐसा हो, तो कोई भी गुलाम देश कभी भी आजादी हासिल नहीं कर सकेगा। यह कथन कि युद्धघोषणा करने वाली सेना या सरकार के अधिकार में कुछ प्रदेश होना चाहिये, गत महायुद्ध में असत्य सिद्ध हो चुका है। इन दिनों लन्दन आकर बसने वाली फ्रेंच, डच या युगोस्लाविया की सरकार के पास एक इंच भी जगह न थी। किसी ने उन्हें अपने देशों की स्वाधीनता-प्राप्ति के निमित्त लड़ने से मना नहीं किया। यह बात सही है कि लन्दनस्थित विदेशी सरकारों को

अपने देशों की स्वाधीनता को खोये हुये कुछ दिन हुए थे, जबकि हम १५० वर्षों से पराधीन हैं। फिर भी स्वाधीनता प्राप्त करने का हमारा अधिकार वैसा ही अबाधित होना चाहिये, जैसा कि इन सरकारों का था। हम भारतीय हैं। इसलिये हमारे प्रति पक्षपात की दृष्टि से देखना न्यायसँगत नहीं है। अपने इस कथन को और स्पष्ट करते हुए श्री देसाई ने कहा कि जब फ्रांस में मैक्विस फौजें फ्रांस की स्वाधीनता की प्राप्ति के लिये लड़ रही थीं, तब मार्शल पेतांकी सरकार उस देश पर अधिकृत रूप से शासन कर रही थी। बाद में वह जर्मनों से मिल गई। इससे आप समझ जायेंगे कि मैक्विस फौजें स्वदेश की स्वाधीनता की प्राप्ति के लिये तत्कालीन फ्रेंच सरकार के विरुद्ध लड़ रहीं थीं। यदि ये फौजें अपने उद्देश्य में असफल हो जातीं, तो अवश्य ही उनकी विरोधी फ्रेंच-सरकार ने उन्हें विद्रोही सम्बोधित कर गोली से उड़ा दिया होता। फील्ड मार्शल आइसेनहोवर ने इन सेनाओं को अभयदान दिया था। उसका स्पष्ट अर्थ यह है कि कोई व्यक्तिसमूह अपने देश की मुक्ति के लिये अपनी ही सरकार के विरुद्ध लड़ता है, तो उसे वे समस्त अधिकार मिलने चाहियें, जो सैनिकों को प्राप्त रहते हैं। जनरल आइसेनहोवर ने ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कार्पोरेशन के रेडियो से इस विषयक स्पष्ट घोषणा करते हुए कहा था कि जो भी कोई मैक्विस फौजों के विरुद्ध कार्यवाही करेगा, उसकी हम खबर लिये बिना न रहेंगे। इसी प्रसंग में भारत उपमन्त्री मि० हण्डर्सन के पार्लमेंण्ट में दिये गये एक वक्तव्य की ओर अदालत का ध्यान खींचते हुये श्री देसाई ने कहा कि मि. हंडर्सन

ने भी अन्ततः यह स्वीकार कर लिया है कि सम्राट के विरुद्ध युद्ध करना गंभीर अपराध नहीं माना जा सकता।

इसके बाद श्री देसाई ने वफादारी के मुख्य प्रश्न पर बहस की। आपने सिंगापुर में किये गये आत्म-समर्पण के बाद आजाद हिन्द फौज के निर्माण के इतिहास का सिंहावलोकन करते हुए कहा कि कप्तान एम० आर० अरशाद ने बिल्कुल ठीक ही कहा है कि जब अंग्रेजों ने हमें जापानियों के हाथों में सौंप दिया, तब हमारी वफादारी सिवाय हमारे देश के किसी और के प्रति नहीं रह सकती थी। इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान की भिन्न भिन्न परिस्थितियों का विवेचन करते हुये आपने कहा कि इंग्लैंड में वफादारी की शपथ जब राजा और देश के प्रति ली जाती है, तब इस देश में वह सिर्फ राजा के प्रति ली जाती है। जब हम स्वदेश की स्वतन्त्रता के लिये राजा के विरुद्ध लड़ते हैं, तब वफादारी का सवाल उठ ही नहीं सकता। अपनी आत्मा को बेचे बिना यह नहीं कहा जा सकता कि मुझे अपने देश की स्वतन्त्रता के लिये लड़ने को किसी अन्य के प्रति वफादारी रोकती है। ऐसी स्थिति में हम सदा गुलाम ही बने रहेंगे। अंग्रेजों ने जिन युद्धबन्दियों को जापान के हाथों में दे दिया था, उनके सामने परिस्थितियों ने राजा और देश में से किसी एक को चुनने का प्रश्न पैदा कर दिया था। इस सचाई को यों ही आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता।

सरकारी पक्ष की ओर से यह कहना बहुत भद्दी बात होगी कि आजाद हिन्द सरकार और फौज जापानियों की कठपुतली

ने राजा की अपेक्षा देश को तरजीह दी और दोनों में से देश के प्रति की गई वफादारी की शपथ को प्रधानता दी। इस ऐतिहासिक उदाहरण में राजभक्ति और देशभक्ति के बीच पैदा होने वाले द्वन्द का शास्त्रीय विवेचन किया गया है। इस घोषणा के अनुसार दोनों देशों में पांच वर्षों तक युद्ध चला और १७८१ में वर्तमान स्वतन्त्र अमेरिका की स्थापना हुई और वह इतना शक्तिसम्पन्न बन गया कि उसने गत महायुद्ध में सभ्यता को विनाश से बचा लिया। यदि इस उदाहरण को स्वीकार नहीं किया जा सकता, तो न्याय को सर्वथा ही तिलांजलि दे डालनी होगी।

आजाद हिन्द सरकार के घोषणापत्र की अमेरिका के घोषणापत्र के साथ, तुलना और फरेर-पार्क की घटना तथा भारत की तत्कालीन परिस्थिति का उल्लेख करते हुये श्री देसाई ने कहा कि अमेरिकनों ने १७७६ में जो कुछ किया, वही करना आजाद हिन्द फौज के लिये भी न्यायसंगत ही था। इसके बाद आपने राष्ट्रपति ट्रूमैन और श्री चर्चिल की कुछ दिन पहले की गई वे घोषणायें उद्धृत कीं, जिनमें कहा गया है कि ईश्वर ने सबको एक-सा पैदा किया है। वे सब समान रूपसे आजादी और सुख-समृद्धि के अधिकारी हैं। यदि इसमें कोई सरकार बाधा पैदा करती है तो जनता का अधिकार है कि उसको खत्म कर दे। सुप्रसिद्ध अंग्रेज विधानवेत्ता, मि० वेटेल की १६१७ में प्रकाशित "ला आफ नेशन" पुस्तक का उद्धरण भी पेश किया, जिसमें कहा गया है कि यदि कोई शक्तिशाली राष्ट्र अपने आधीन कमजोर राष्ट्र की रक्षा न कर सके, तो पराधीन राष्ट्र स्वयं स्वतन्त्र हो
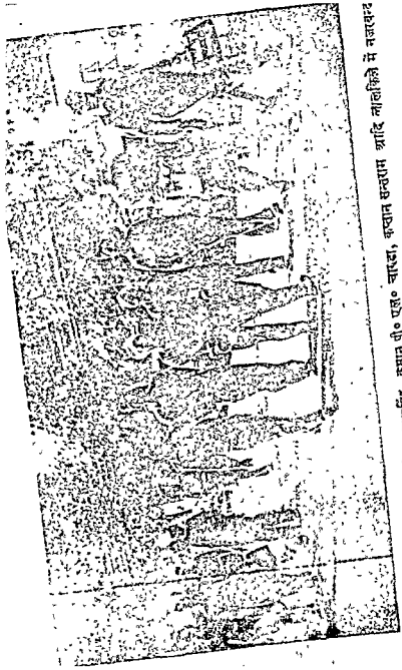
... नसरुद्दीन, मेजर चरणसिंह, कप्तान पी० एल० चोपड़ा, कप्तान सन्तराम आदि लालकिले में नजरबन्द

सकता है। आस्ट्रिया का लारेन शहर इसी आधार पर वहां के ड्यूक से सर्वथा स्वतन्त्र हो गया था। ठीक यही स्थिति आजाद हिन्द फौज की थी। युद्धबन्दी के लिये ऐसा कोई भी बन्धन शेष नहीं रह जाता, जो उसको अपने देशकी आजादी के लिये लड़ने से रोक सके। युद्धबन्दी शत्रु की सेना में भरती न होकर उसके लिये मेहनत-मजूरी का काम तो कर ही सकता है। इस लिये इस बारे में आजाद हिन्द फौज और जापानी फौज के पारस्परिक सम्बन्ध को भुलाना नहीं चाहिये। नाग, चन्चनसिंह और अरशाद आदि की गवाहियों के लम्बे उद्धरण पेश करते हुये और पहिली आजाद हिन्द फौज के भंग करने तथा उस समय जापानियों के साथ हुये मतभेद का विस्तार के साथ उल्लेख करते हुये श्री देसाई ने कहा कि वे अपने देश की आजादी के लिये जापान के साथ भी लड़ने को तय्यार थे। उसके वायदों की सचाई पर भरोसा करके ही उस के साथ उन्होंने दोस्ती की थी। अपने इस कथन के समर्थन में श्री देसाई ने लैफ्टिनेन्ट कर्नल लोकनाथन की गवाही के भी अनेक अंश उद्धृत किये और बंगकौक सम्मेलन के तेरहवें प्रस्ताव का वह अंश भी उद्धृत किया, जिसमें कहा गया था कि आजाद हिन्द फौज का उपयोग हिन्दुस्तान में विदेशी शासन का अन्त करके उसकी स्वाधीनता की प्राप्ति तथा उसमें सहायक होने वाले कार्यों के लिये ही किया जायगा। कर्नल नाग की गवाही से एक और उद्धरण उपस्थित करके श्री देसाई ने कहा कि यह भी सिद्ध हो चुका है कि आजाद हिंद फौज के सभी अफसर हिन्दुस्तानी थे और जापानियों की

बाहरी देखरेख होने पर भी अन्दरूनी मामलों में वह सर्वथा स्वतन्त्र थी। यह कहना भयँकर भूल है कि फौज में युद्ध-बन्दी बने रहने की अपेक्षा अधिक आराम था। कम से कम मृत्यु का भय तो फौज में कम न था। अभियुक्तों ने अफसर की हैसियत से और श्री सुभाषचन्द्र बोस ने भी बार-बार यह कहा था कि कोई भी सैनिक कभी भी फौज से अलग हो सकता है। भरती इतनी स्वेच्छा से होती थी कि भरती होने वालों को अत्यधिक संख्या में शस्त्रों के अभाव के कारण प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। इस स्थिति में जोर-जुल्म या बल-प्रयोग की आवश्यकता ही क्या थी? अपने इस कथन को समर्थन में श्री देसाई ने अनेक गवाहों की गवाहियां पेश कीं और विस्तार के साथ उनकी मीमांसा की। श्री धारगलकर की गवाही को सन्देहपूर्ण बताने के लिये श्री देसाई ने उसका विवेचन किया और कहा कि अभियुक्तों पर जोरजबरदस्ती करने, बलप्रयोग करने या धमकी देने का अभियोग लगाना निराधार है। सबूत पक्ष के गवाहों की गवाहियों के आधार पर आपने यह सिद्ध किया कि अभियुक्तों के विरुद्ध हत्या करने अथवा उसमें सहयोग देने के अभियोग प्रमाणित नहीं किये जा सके हैं। सरकारी वकील ने यह मान लिया है कि जब युद्धबन्दियों पर अत्याचार किये गये, तब न तो अभियुक्त उपस्थित थे और न उनका उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध ही था। इन तथाकथित अत्याचारों का विश्लेषण करके आपने कहा कि ये तो अनुशासन-भंग के लिये दी गई सिर्फ सजायें ही थीं। सरकारी गवाह नं० १० अहमद

नवाज ने अपने पर किये गये जिस 'अत्याचार' का वर्णन किया है. वह बहुत ही हास्यास्पद है। यह अत्याचार यह था कि उसको गोबर और सोड़ा ऐश से खाद तय्यार करने को कहा गया था। अनुशासन भंग की सजाओं को आजाद हिन्द फौज में भरती होने के लिये किया गया बल-प्रयोग बताना उपहासास्पद है, जो कि पढ़ाये हुये तोते की तरह बताया जा रहा है। हत्या या उस में सहयोग देने के अपराधों का उपस्थित सामग्री के आधार पर सिद्ध कर सकना असम्भव है। अभियुक्तों को सन्देह का लाभ तो मिलना ही चाहिये। चार व्यक्तियों के गोली से उड़ाने के बारे में तो आजाद हिंद फौज की प्राइमाफेसी रिपोर्ट मिलती है. किंतु मुहम्मद हुसैन के सम्बन्ध में कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इस बारे में पेश की गई गवाहियां विश्वास के योग्य नहीं हैं। जिस दिन लैफ्टिनेण्ट ढिल्लन की उपस्थिति में गोली से मुहम्मद हुसैन को मृत्युदण्ड देने की बात कही गई है, उस दिन वे बीमार थे। इसी आशय का उस दिन ६ मार्च १६४५ का उनका एक पत्र भी श्री देसाई ने पढ़ कर सुनाया। गुलाम मुहम्मद, गंगाशरण, अल्लादिया आदि गवाहों के कथनों की मीमांसा करते हुये श्री-देसाई ने कहा कि चार व्यक्तियों को सजा केवल सुनाई ही गई थी। वह कभी भी कार्मान्वित नहीं की गई। श्री देसाई ने अल्लादिया यथा जागीरीराम की गवाहियों के बारे में कहा कि उनको लिखा पढ़ाकर पेश कर दिया गया है। एक महत्वपूर्ण मुद्दा श्री देसाई ने यह उपस्थित किया कि कि सबूत पक्ष के गवाह यह कहने से सर्वथा असमर्थ हैं कि वे चार व्यक्ति निश्चित रूप से

कौन थे ? हत्या के अभियोग में निश्चित व्यक्ति का पता देना आवश्यक है। कर्नल किटसन और गुलाम मुहम्मद ने माना स्वीकार किया है कि कप्तान सहगल ने उनको युद्धवन्दी मानने की शर्त के स्वीकार किये जाने पर ही आत्मसमर्पण किया था। इसलिये उनको युद्धवन्दी मान कर रिहा कर देना चाहिये।

अन्त में आपने वैधानिक प्रश्न उपस्थित करते हुए सारे ही अभियोग को अवैधानिक बताया। प्रान्तीय सरकार की अनुमति के बिना फौजदारी मुकद्दमा नहीं चलाया जा सकता। प्रिवि कौंसिल के एक फैसले के आधार पर आपने कहा कि जो अपराध सब अभियुक्तों ने मिलकर किया है, उसी के लिये सम्मिलित मुकद्दमा चलाया जा सकता है। हत्या या उसमें सहयोग देने के अभियोग इस दृष्टि से सर्वथा अवैध है। अपनी सारी बहस का सिंहावलोकन करने के बाद श्री देसाई ने जोरदार शब्दों में कहा कि तीनों अभियुक्तों के सर्वथा निर्दोष होने का ऐलान अदालत को करना चाहिये। आप ने यह भी कहा कि यदि सरकारी वकील कोई नया मुद्दा पेश करें, तो मुझे उसका लिखित उत्तर देने का अवसर दिया जाना चाहिये।

जज एडवोकेट ने इस पर कानूनी आपत्ति की और श्री-देसाई की इस बात को भी स्वीकार नहीं किया गया कि सरकारी वकील को यह आदेश दिया जाय कि वे कोई नया मुद्दा अपनी बहस में पेश न करें। सरकारी वकील की मांग पर अदालत की कार्यवाही २२ दिसम्बर के लिये मुलतवी कर दी गई।

देशभक्ति की विजय

सरकारी वकील ने २२ दिसम्बर को अपना लिखा हुआ वक्तव्य पढ़ सुनाया। सरकारी वकील ने सब अभियुक्तों को सब अभियोगों में दोषी ठहराते हुये कहा कि प्रचुर गवाहियों से यह दिखाया जा चुका है कि अभियुक्तों ने जो कुछ भी किया, वह स्वार्थ की भावना से नहीं; अपितु देशभक्ति की भावना से ही प्रेरित होकर किया था। उन्होंने बुद्धिमत्ता की हो या वे बहकावे में आ गये हों, किन्तु उन्होंने देश की सेवा की भावना से ही यह सब किया। कानूनी दृष्टि से यह बचाव भले ही न हो, किन्तु अभियुक्तों को दोषी माने जाने पर इस पर न्यायदृष्टि से विचार अवश्य किया जा सकता है। सजा के लिये अदालत के हाथ बंधे हुये हैं और कम से कम जो सजा दी जा सकती है, वह है आजीवन कारावास। लेकिन, अदालत यदि यह समझे कि उसके सामने पेश की गई गवाहियों के आधार पर सजा कम की जा सकती है, तो वह अपनी सम्मति लिख कर सजा की पुष्टि करने वाले अधिकारी के पास विचार के लिये भेज सकती है। सरकारी वकील के वक्तव्य में तीस हजार से कुछ अधिक ही शब्द थे और उसको पढ़ने में उनको चार घण्टे लगे।

सरकारी वकील ने तीनों अभियुक्तों को आजाद हिन्द फौज की भरती करने, फौज को संगठित करने और सम्राट के विरुद्ध युद्ध करने के आदेश जारी करने का अपराधी बताते हुये कहा कि वे सब १ सितम्बर १९४२ को आजाद हिन्द फौज में भरती हुये थे। उन्होंने दूसरों को भी सम्राट के प्रति अपनी वफादारी को तिलांजलि देने के लिये भड़काया था और उन्होंने सम्राट के विरुद्ध युद्ध करना स्वयं स्वीकार किया है। जुल्म-ज्यादती, बल-प्रयोग और धमकी के अभियोग को सिद्ध करने के लिये गवाहियां उद्धृत करने में सरकारी वकील ने एक घण्टा ले लिया और अपने पक्ष के समर्थन में श्री रासबिहारी बोस की लिखी हुई 'हमारा संघर्ष' पुस्तिका भी प्रस्तुत की। अभियुक्तों के भाषणों से, सरकारी वकील ने कहा कि, यह प्रगट है कि उनको इन जुल्म-ज्यादतियों का पता था और उनसे बचने के लिये युद्ध-बन्दियों से फौज में भरती होने को कहा जाता था।

आजाद हिन्द सरकार की स्थापना को स्वतः ही अपराध बताते हुये सरकारी वकील ने कहा कि युद्ध जिस उद्देश्य से लड़ा गया, वह भी सर्वथा नगण्य है। उद्देश्य कुछ भी क्यों न हो, कार्य स्वतः ही एक अपराध है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून को जब तक किसी देश का विधान स्वीकार न कर ले, तब तक उसको बचाव के लिये पेश नहीं किया जा सकता। ताजीरात हिन्द की ७१वीं धारा में जिस कानून का उल्लेख है, उसका मतलब ब्रिटिश भारत में प्रचलित कानून से है। युद्ध-रत राष्ट्र के लिये आवश्यक है कि देश का कुछ भाग उसके आधीन हो, उसका अपना शासन हो

और युद्ध-सम्बन्धी नियमों के अनुसार युद्ध का संचालन किया गया हो। इस मामले में न तो क्रान्ति होकर कोई सरकार ही कायम हुई थी और न कोई गृह-युद्ध ही हुआ था। यह लड़ाई दो राष्ट्रों के बीच नहीं हुई थी। पहिले कानूनन स्थापित हुई सरकार ने विरोधियों को युद्ध-रत राष्ट्र नहीं माना था। उनके हाथ में अपने राष्ट्र या देश का ऐसा कोई भी भाग न आया था, जिसमें उन्होंने अपना शासन कायम था होता और जिसे वे अपना बता सकते।

इंग्लैण्ड और अमेरिका के विधान में बड़ा अन्तर यह है कि इंग्लैण्ड के विधान पर अन्तर्राष्ट्रीय विधान हावी नहीं हो सकता और अमेरिका के विधान पर वह हावी हो जाता है। इस लिये अमेरिका का उदाहरण यहां लागू नहीं हो सकता। आजाद हिन्द सरकार को ब्रिटिश सरकार की मान्यता मिले बिना युद्ध-रत राष्ट्र की सुविधायें या कानूनी अधिकार मिल नहीं सकते।

आजाद हिन्द सरकार को बागी बताते हुये सरकारी वकील ने कहा कि उसके पास न तो एक इंच भूमि थी और न वह कोई कर या टैक्स ही वसूल करती थी। वह तो तब अस्तित्व में आने वाली थी, जब जापान ने हिन्दुस्तान को जीतकर उसके हाथों में दे दिया होता। जापान ने अपना मतलब गांठने को उसे अन्य सरकारों से मान्यता दिला दी थी। यह इतिहास से सिद्ध है कि हिन्दुस्तान को जीतने के बाद जापान ने क्या किया होता ? उसके वायदों की वास्तव में कुछ भी कीमत न थे। जापान को अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार कोई भी विजित प्रदेश

सारे देश में बिजली की तरह फैल गया और चारों ओर हर्ष, उत्साह तथा उल्लास की लहरें दौड़ गईं ।

कर्नल शाह नवाजखां ने रिहाई के बाद ठीक ही कहा था कि "हमारी रिहाई देश की विजय है, जिसकी संयुक्त मांग के सामने ब्रिटिश सरकार को घुटने टेकने पड़े हैं। हमने अपने को देश की आजादी के लिये न्यौछावर करने की शपथ नेताजी के सामने ली थी। हमारी वह शपथ आज भी वैसी ही कायम है। हमने संयुक्त और महान् राष्ट्र की आजादी के ऊंचे ध्येय से युद्ध का श्रीगणेश किया था और उसके लिये हमारी वह लड़ाई अब भी जारी रहेगी। देश के बाहर हमने यह लड़ाई शस्त्रास्त्रों और गोलाबारूद से लड़ी थी। अब हम उसी पवित्र ध्येय के लिये इस लड़ाई को अहिंसात्मक तरीके से जारी रखेंगे। हिन्दु-मुस्लिम एकता को सुदृढ़ बनाना हमारा मिशन होगा।"

कर्नल शाह नवाजखां के ये शब्द आजाद हिन्द फौज के वीर सैनिकों में नेताजी द्वारा उनमें भरी गई अदम्य भावना के द्योतक हैं। इम्फाल के मोर्चे से पराजित होकर लौटने पर भी यह भावना मुर्झाई नहीं, अपितु अजेय बनी हुई है। यह दिन दूनी रात चौगुनी फल-फूल रही है और चारों ओर फैल रही है।

जय हिन्द

इनक़लाब जिन्दाबाद

आजाद हिन्द जिन्दाबाद

हमारे एजेण्ट

बम्बई—जयहिन्द बुक डिपो, सी० पी० टैंक।
ब्यावर—श्री भंवरलाल आर्य, आर्य न्यूजपेपर एजेन्सी।
ग्वालियर—श्री एम० बी० जैन एण्ड ब्रदर्स, बड़ा सराफा।
शेखावाटी (सीकर)—सीकर ट्रेडिङ्ग कम्पनी।
कराची—सिन्धु बुक स्टोर्स, महात्मा गांधी रोड और राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति।
शामली (मुजफ्फर नगर)—कमला खादी भण्डार।
अलवर—राजस्थान पुस्तक भण्डार।
भर्थना (इटावा)—श्री प्यारेलाल गुप्ता 'आजाद'।
लाहौर—हिन्दी भवन और पंजाब ग्राम सेवा मण्डल।
रायपुर—राष्ट्रीय विद्यालय बुक डिपो।
देहरादून—साहित्य सदन, पुरानी कोतवाली।
अम्बाला शहर—भारत पुस्तक भण्डार।
कोटा—मोहन न्यूज एजेन्सी। भिवानी—शर्मा ब्रदर्स।
इन्दौर—नवयुग साहित्य सदन और दयानन्द मिशन।
अम्बाला छावनी—अरविन्द कला मन्दिर।
नाथद्वारा—श्री आर० एन० कपूर। लातूर—जनरल स्टोर।
सिकन्दराबाद और हैदराबाद—नेशनल न्यूज एजेंसी।
परभणी—हिन्दी पुस्तक भण्डार।
बरेली—प्रेम पुस्तक भण्डार। जोधपुर—किताब घर।
मेरठ—लाइट हाउस। मैनपुरी—आर्य साहित्य मन्दिर।

तिनसुखिया (आसाम)—श्रीकृष्ण खादी भण्डार।
भरतपुर—आर्य मदर्स एण्ड कम्पनी।
इलाहाबाद—विश्ववाणी कार्यालय, साउथ मलाका।
बीकानेर—श्री गंगादास कौशिक, रेलवे स्टेशन रोड।
नजीबाबाद (बिजनौर)—श्री महेन्द्रकुमार अग्रवाल।
खुर्जा सिटी—श्री कन्हैयालाल शर्मा, न्यूज एजेण्ट।
कोठद्वार—श्री दुर्गाप्रसाद भारतभूषण।
कलकत्ता—कमला स्टोरस, अपर चितपुर रोड।
रक्सौल—श्री मदनमोहन गुप्ता, विश्राम कुटीर।
काशीपुर (नैनीताल)—श्री शेरसिंह, बुकसैलर।
दमोह—श्री नन्दीलाल डालचन्द जैन।
सुजानगढ़—श्री श्याम बुक डिपो
अलमोड़ा—पन्त स्टोर, माल।
जबलपुर—श्री के० सी० नेमा, आवर हाई स्कूल।
सरदारशहर—श्री महालचन्द हनुमानमल मोड़क और
मोहनलाल जैन, ज्ञान मन्दिर।
नागपुर—श्री राममूर्ति मिश्र, सुभाषचन्द्र रोड।
अलीगढ़—मौर्डन पब्लिशिंग हाउस।
गोरखपुर—हलचल साहित्य मन्दिर।
रिवाड़ी—भारतीय साहित्य सदन।

लखनऊ, कानपुर तथा आगरा आदि बड़े शहरों में प्रायः सभी पुस्तक विक्रेताओं के यहां पुस्तकें मिलेंगी।